बच्चन की अन्य रचनाएँ

१ एकांत संगीत—

एक सौ गीतों का संग्रह

२ निशा निमंत्रण—

एक सौ गीतों का संग्रह

३ मधुकलश—

लंबी कविताओं का संग्रह

४ मधुबाला—

लंबी कविताओं का संग्रह

५ मधुशाला—

रुबाइयों का संग्रह

६ खैयाम की मधुशाला—

रुबाइयात उमर खैयाम का पद्यानुवाद

७ तेरा हार—

प्रारंभिक कविताओं का संग्रह

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के अंत में देखिए।

आकुल अंतर

बच्चन

ग्रंथ-संख्या—९७

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस,
इलाहाबाद

पहला संस्करण
सं० '९९,
मूल्य १।।)

मुद्रक
कृष्णाराम मेहता
लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

विज्ञापन

आज बच्चन की नवीनतम रचना 'आकुल अतर' उनकी कविता के प्रेमियों के आगे उपस्थित करते समय हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है। 'एकात सगीत' के पश्चात उनकी रचनाएँ 'आकुल अतर' और 'विकल विश्व' दो मालाओं में पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। उनके द्वारा उन्होंने आतरिक और बाह्य अशाति, विह्वलता और विक्षुब्धता को वाणी देने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत सग्रह में प्रथम श्रेणी की ७१ कविताएँ सगृहीत हैं।

बच्चन अपने काव्य जीवन की प्रगति में किसी स्थान पर ठहरे नहीं। उनकी प्रत्येक रचना उनके मानसिक विकास का एक चिह्न है। 'आकुल अतर' उनकी पिछली रचना 'एकात सगीत' के ऊपर एक नई सीढी है। 'एकात सगीत' की अतिम कविता थी 'कितना अकेला आज मे'। 'आकुल अतर' की अतिम रचना है 'तू एकाकी तो गुनहगार'। केवल यही दो पक्तियाँ यह बतलाने के लिए पर्याप्त है कि कवि ने कितनी मज़िल पार कर ली है?

कवि ने 'निशा निमत्रण' के साथ गीतों की एक नई शैली चलाई थी। 'एकात सगीन' में उसके रूप में कुछ परिवर्तन तो अवश्य हुआ

परंतु ढाँचा करीब करीब वही रहा। इस संग्रह में भाव और विचारों में परिवर्तन होने के साथ गीतों के रूप में भी भारी परिवर्तन हुआ है। छंद और तुकों के बंधन से मुक्त होकर कितने ही गीत केवल लय के बल पर लिखे गए हैं। यह परिवर्तन कहाँ तक कविता की आंतरिक आवश्यकता के कारण लाए गए हैं इसे विचारवान पाठक स्वयं देख लेंगे। बच्चन की कविता के प्रेमी उनके भावों और उनके प्रकट करने के माध्यम का जो अटूट संबंध उनकी पुरानी रचनाओं में पाते रहे हैं उसे वे यहाँ भी पाएँगे। कवि की इस कृति का उनकी रचनाओं में अथवा अन्य सामयिक रचनाओं में क्या स्थान होगा इसका निर्णय तो समालोचक गण करेंगे, समय करेगा। हम यहाँ केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि भावों के प्रति ईमानदारी जो कवि की एक अपनी विशेषता हो गई है आपको यहाँ भी वैसी ही मिलेगी जैसी अन्य किसी रचना में। 'आकुल अंतर' एक आकुल अंतर का प्रतिबिंब है।

हमें एक बात की प्रसन्नता और है कि 'आकुल अंतर' के अतिरिक्त हम बच्चन की सभी पिछली रचनाओं का नवीन संस्करण नए रूप में शीघ्र ही प्रकाशित कर रहे हैं। उनकी कई पिछली रचनाएँ बहुत दिनों से अप्राप्य थीं और पाठकों को निराश होना पड़ता था। अब उनकी समस्त रचनाएँ, एक ही आकार-प्रकार में एक ही स्थान से प्राप्त हो सकेंगी।

कागज और छपाई का दाम जैसा दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है वह पुस्तकों के बाजार से परिचित किसी व्यक्ति से छिपा नहीं है।

इसी लिए पुस्तकों के मूल्य में हमें कुछ वृद्धि करनी पड़ी है। हमें विश्वास है कि इस स्वल्प मूल्य वृद्धि के कारण बच्चन की पुस्तकों की लोकप्रियता में कोई कमी न होगी और लोग उन्हें उसी भाव से अपनायेंगे जैसे अब तक करते आए हैं।

—प्रकाशक

गुरुवर पंडित अमरनाथ झा को
सादर सप्रेम समर्पित

सूची

आकुल अतर के गीत . पृष्ठ सख्या

आकुल अंतर के गीत

आकुल अंतर

१

लहर सागर का नही शृगार,
उसकी विकलता है,
अनिल अबर का नहीं खिलवार,
उसकी विकलता है,
विविध रूपों मे हुआ साकार,
रगों से सुरजित,
मृत्तिका का यह नहीं ससार
उसकी विकलता है।

गध कलिका का नहीं उद्‌गार,
उसकी विकलता है,
फूल मधुवन का नही गलहार,
उसकी विकलता है,
कोकिला का कौन-सा व्यवहार
ऋतुपति को न भाया?
कूक कोयल की नहीं मनुहार,
उसकी विकलता है।

गान गायक का नहीं व्यापार,
उसकी विकलता है,
राग वीणा की नहीं झंकार,
उसकी विकलता है,
भावनाओं का मधुर आधार
साँसों से विनिर्मित,
गीत कवि-उर का नहीं उपहार,
उसकी विकलता है।

—

२

मेरे साथ अत्याचार।

प्यालियाँ अगणित रसों की
सामने रख राह रोकी,
पहुँचने दी अधर तक बस आँसुओं की धार।
मेरे साथ अत्याचार।

भावना अगणित हृदय में,
कामना अगणित हृदय में,
आह को ही बस निकलने का दिया अधिकार।
मेरे साथ अत्याचार।

हर नहीं तुमने लिया क्या,
तज नहीं मैंने दिया क्या,
हाय, मेरी विपुल निधि का गीत बस प्रतिकार।
मेरे साथ अत्याचार।

३

बदला ले लो, सुख की घड़ियो !

सौ-सौ तीखे काँटे आए
फिर-फिर चुभने तन मे मेरे ।
था ज्ञात मुझे यह होना है क्षण-भगुर स्वप्निल फुलझड़ियो !
बदला ले लो सुख की घड़ियो !

उस दिन सपना की झाँकी मे
मैं क्षण भर को मुसकाया था,
मत टूटो अब तुम युग-युग तक, हे खारे आँसू की लड़ियो !
बदला ले लो सुख की घड़ियो !

मैं कचन की जजीर पहन
क्षण भर सपने मे नाचा था,
अधिकार, सदा को तुम जकड़ो मुझको लोहे की हथकड़ियो !
बदला ले लो सुख की घड़ियो !

४

कैसे आँसू नयन सँभाले।

मेरी हर आशा पर पानी,
रोना दुर्बलता, नादानी,
उमडे दिल के आगे पलकें कैसे बाँध बनाले।
कैसे आँसू नयन सँभाले।

समझा था जिसने मुझको सब,
समझाने को वह न रही अब,
समझाते मुझको हे मुझको कुछ न समझनेवाले।
कैसे आँसू नयन सँभाले।

मन में या जीवन मे आते
वे, जो दुर्बलता दुलराते,
मिले मुझे दुर्बलताओं से लाभ उठानेवाले।
कैसे आँसू नयन सँभाले।

५

आज आहत मान, आहत प्राण !

कल जिसे समझा कि मेरा
मुकुर - बिंबित रूप,
आज वह ऐसा, कभी की हो न ज्यों पहचान।
आज आहत मान, आहत प्राण !

'मैं तुझे देता रहा हूँ
प्यार का उपहार',
'मूर्ख मैं तुझको बनाती थी निपट नादान।'
आज आहत मान, आहत प्राण !

चोट दुनिया-दैव की सह
गर्व था, मैं वीर,
हाय, ओडे थे न मैंने शब्द-वेधी-बाण।
आज आहत मान, आहत प्राण !

६

जानकर अनजान बन जा ।

पूछ मत आराध्य कैसा,
जबकि पूजा-भाव उमडा,
मृत्तिका के पिंड से कहदे कि तू भगवान बन जा ।
जानकर अनजान बन जा ।

आरती बनकर जला तू,
पथ मिला, मिट्टी सिधारी,
कल्पना की वचना से सत्य से अज्ञान बन जा ।
जानकर अनजान बन जा ।

किंतु दिल की आग का
ससार मे उपहास कब तक ?
किंतु होना, हाय, अपने आप
हतविश्वास कब तक ?
अग्नि को अदर छिपाकर, हे हृदय, पाषाण बन जा ।
जानकर अनजान बन जा ।

७

कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ ?

क्या तुम लाई हो चितवन मे,
क्या तुम लाई हो चुंबन मे,
अपने कर मे क्या तुम लाई,
क्या तुम लाई अपने मन मे,
क्या तुम नूतन लाई जो मैं
फिर से बंधन झेलूँ ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ ?

अश्रु पुराने, आह पुरानी,
युग बाहों की चाह पुरानी,
उथले मन की थाह पुरानी,
वही प्रणय की राह पुरानी,
अर्घ्य प्रणय का कैसे अपनी
अन्तर्ज्वाला मे लूँ ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ ?

खेल चुका मिट्टी के घर से,
खेल चुका मैं सिंधु लहर से,
नभ के सूनेपन से खेला,
खेला झंझा के झर-झर से,
तुम मे आग नहीं है तब क्या
संग तुम्हारे खेलूँ ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ ?

८

मैंने ऐसी दुनिया जानी।

इस जगती के रंगमञ्च पर
आऊँ मैं कैसे, क्या बनकर,
जाऊँ मैं कैसे क्या बन कर—
सोचा, यत्न किया भी जी भर,
किंतु कराती नियति नटी है
मुझसे बस मनमानी।
मैंने ऐसी दुनिया जानी।

आज मिले दो यही प्रणय है,
दो देहों में एक हृदय है,
एक प्राण है, एक श्वास है,
भूल गया मैं यह अभिनय है,
सबसे बढ़कर मेरे जीवन
की थी यह नादानी।
मैंने ऐसी दुनिया जानी।

यह लो मेरा क्रीडास्थल है,
यह लो मेरा रंग-महल है,
यह लो अंतरहित मरुथल है,
ज्ञात नहीं क्या अगले पल है,
निश्चित पटाक्षेप की घटिका
भी तो है अनजानी।
मैंने ऐसी दुनिया जानी।

—

९

क्षीण कितना शब्द का आधार !

मौन तुम थीं, मौन मैं था, मौन जग था,
तुम अलग थीं और मैं तुम से अलग था,
जोड़-से हमको गए थे शब्द के कुछ तार।
क्षीण कितना शब्द का आधार !

शब्दमय तुम और मैं जग शब्द से भर पूर,
दूर तुम हो और मैं हूँ आज तुम से दूर,
अब हमारे बीच में है शब्द की दीवार।
क्षीण कितना शब्द का आधार !

कौन आया और किसके पास कितना,
मैं करूँ अब शब्द पर विश्वास कितना,
कर रहे थे जो हमारे बीच छल-व्यापार !
क्षीण कितना शब्द का आधार !

१०

मैं अपने से पूछा करता।

निर्मल तन, निर्मल मनवाली,
सीधी-सादी, भोली-भाली,
वह एक अकेली मेरी थी, दुनिया क्यो अपनी लगती थी?
मैं अपने से पूछा करता।

तन था जगती का सत्य सघन,
मन था जगती का स्वप्न गहन,
सुख-दुख, जगती का हास-रुदन,
मैंने था व्यक्ति जिसे समझा, क्या उसमे सारी जगती थी?
मैं अपने से पूछा करता।

वह चली गई, जग मे क्या कम,
दुनिया रहती दुनिया हरदम,
मैं उसको धोखा देता था अथवा वह मुझको ठगती थी?
मै अपने से पूछा करता।

११

अरे है वह अंतस्तल कहाँ ?

अपने जीवन का शुभ-सुंदर
बाँटा करता हूँ मैं घर-घर,
एक जगह ऐसी भी होती,
निःसंकोच विकार-विकृति निज सब रख सकता जहाँ ?
अरे है वह अंतस्तल कहाँ ?

करते कितने सर-सरि-निर्झर
मुखरित मेरे आँसू का स्वर,
एक उदधि ऐसा भी होता,
होता गिरकर लीन सदा को नयनों का जल जहाँ।
अरे है वह अंतस्तल कहाँ ?

जगती के विस्तृत कानन में
कहाँ नहीं भय औ' किस क्षण में ?
एक बिंदु ऐसा भी होता,
जहाँ पहुँचकर कह सकता मैं, 'सदा सुरक्षित यहाँ'।
अरे है वह अंतस्तल कहाँ ?

१२

अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

ऊँची ग्रीवा रख आजीवन
चलने का लेकर के भी प्रण
मन मेरा खोजा करता है,
क्षण भर को वह ठौर झुका दूँ गर्दन अपनी जहाँ।
अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

ऊँचा मस्तक रख आजीवन
चलने का लेकर के भी प्रण
मन मेरा खोजा करता है,
क्षण भर को वह ठौर टिका दूँ मत्था अपना जहाँ।
अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

कभी करूँगा नहीं पलायन
जीवन से, लेकर के भी प्रण
मन मेरा खोजा करता है,
क्षण भर को वह ठौर छिपा लूँ अपना शीश जहाँ।
अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

१३

अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

जीवन एक समर है सचमुच,
पर इसके अतिरिक्त बहुत कुछ,
योद्धा भी खोजा करता है,
कुछ पल को वह ठौर युद्ध की प्रतिध्वनि नहीं जहाँ।
अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

जीवन एक सफर है सचमुच,
पर इसके अतिरिक्त बहुत कुछ,
यात्री भी खोजा करता है,
कुछ पल को वह ठौर प्रगति यात्रा की नहीं जहाँ।
अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

जीवन ,एक गीत है सचमुच,
पर इसके अतिरिक्त बहुत कुछ,
गायक भी खोजा करता है,
कुछ पल को वह ठौर मूकता भग न होती जहाँ।
अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

—

१४

क्या है मेरी बारी मे।

जिसे सींचना था मधुजल से
सींचा खारे पानी से,
नहीं उपजता कुछ भी ऐसी विधि से जीवन-क्यारी में।
क्या है मेरी बारी मे।

आँसू-जल से सींच-सींचकर
बेलि विवश हो बोता हूँ,
स्रष्टा का क्या अर्थ छिपा है मेरी इस लाचारी मे।
क्या है मेरी बारी मे।

टूट पडे मधुऋतु मधुवन मे
कल ही तो क्या मेरा है,
जीवन बीत गया सब मेरा जीने की तैयारी मे।
क्या है मेरी बारी मे।

१५

मैं समय बर्बाद करता ?

प्रायशः हित-मित्र मेरे
पास आ संध्या सवेरे,
हो परम गंभीर कहते—मैं समय बर्बाद करता।
मैं समय बर्बाद करता ?

बात कुछ विपरीत ही है,
सूझता उनको नहीं है,
जो कि कहते आँख रहते—मैं समय बर्बाद करता!
मैं समय बर्बाद करता ?

काश मुझमें शक्ति होती
नष्ट कर सकता समय को,
औ' समय के बंधनों से
मुक्त कर सकता हृदय को,
भर गया दिल जुल्म सहते—मैं समय बर्बाद करता।
मैं समय बर्बाद करता।

१६

आज ही आना तुम्हे था ?

आज मैं पहले पहल कुछ
घूँट मधु पीने चला था,
पास मेरे आज ही क्यों विश्व आ जाना तुम्हे था।
आज ही आना तुम्हे था ?

एक युग से पी रहा था
रक्त मैं अपने हृदय का,
किंतु मद्यप रूप में ही क्या मुझे पाना तुम्हे था।
आज ही आना तुम्हे था ?

तुम बड़े नाजुक समय में
मानवों को हो पकड़ते,
हे नियति के व्यंग, मैंने क्या न पहचाना तुम्हे था।
आज ही आना तुम्हे था ?

१७

एकाकीपन भी तो न मिला।

मैंने समझा था सगराहित
जीवन के पथ पर जाता हूँ,
मेरे प्रति पद की गति-विधि को जग देख रहा था खोल नयन।
एकाकीपन भी तो न मिला।

मैं अपने कमरे के अंदर
कुछ अपने मन की करता था,
दर - दीवारें चुपके - चुपके देती थीं जग को आमन्त्रण।
एकाकीपन भी तो न मिला।

मैं अपने मानस के भीतर
था व्यस्त मनन में, चिंतन में,
साँसें जग से कह आती थीं मेरे अंतर का द्वंद्व-दहन।
एकाकीपन भी तो न मिला।

१८

नई यह कोई बात नहीं।

कल केवल मिट्टी की ढेरी,
आज 'महत्ता' इतनी मेरी,
जगह-जगह मेरे जीवन की जाती बात कही।
नई यह कोई बात नहीं।

सत्य कहे या झूठ बनाए,
भला-बुरा जो जी में आए,
सुनते हैं क्यों लोग—पहेली मेरे लिए रही।
नई यह कोई बात नहीं।

कवि था कविता से था नाता,
मुझको संग उसी का भाता,
किंतु भाग्य ही कुछ ऐसा है,
फेर नहीं मैं उसको पाता,
जहाँ कहीं मैं गया कहानी मेरे साथ रही।
नई यह कोई बात नहीं।

———

१९

तिल मे किसने ताड छिपाया?

छिपा हुआ था जो कोने मे,
शका थी जिसके होने मे,
वह बादल का टुकडा फैला
फैल समग्र गगन मे छाया।
तिल मे किसने ताड छिपाया?

पलको के सहसा गिरने पर
धीमे से जो विदु गए झर,
मैंने कब समझा था उनके
अदर सारा सिधु समाया।
तिल मे किसने ताड छिपाया?

कर बैठा था जो अनजाने,
या कि करा दी थी स्रष्टा ने,
उस गलती ने मेरे सारे
जीवन का इतिहास बनाया।
तिल मे किसने ताड छिपाया?

२०

कवि तू जा व्यथा यह झेल।

वेदना आई शरण मे
गीत ले गीले नयन मे,
क्या इसे निज द्वार से तू आज देगा ठेल।
कवि तू जा व्यथा यह झेल।

पोंछ उसके अश्रुकण को,
अश्रुकण - सिंचित वदन को,
यह दुखी कब चाहती है कलित क्रीडा-केलि।
कवि तू जा व्यथा यह झेल।

है कहीं कोई न इसका,
यह पकड ले हाथ जिसका,
और तू भी आज किसका,
है किसी सयोग से ही हो गया यह मेल।
कवि तू जा व्यथा यह झेल।

२१

मुझको भी ससार मिला है।

जिन्हे पुतलियाँ प्रतिपल सेतीं,
जिन पर पलके पहरा देतीं,
ऐसी मोती की लडियो का मुझको भी उपहार मिला है
मुझको भी ससार मिला है।

मेरे सूनेपन के अदर
हैं कितने मुझ-से नारी-नर !
जिन्हे सुखो ने ठुकराया है मुझको उनका प्यार मिला है
मुझको भी ससार मिला है।

इससे सुदर तन है किसका ?
इससे सुदर मन है किसका ?
मैं कवि हूँ मुझको वाणी के तन-मन पर अधिकार मिला है।
मुझको भी ससार मिला है।

२२

वह नभ कंपनकारी समीर,

जिसने बादल की चादर को
दो झटके मे कर तार-तार,
दृढ गिरि शृंगो की शिला हिला,
डाले अनगिन तरुवर उखाड,
होता समाप्त अब वह समीर
कलि की मुसकानो पर मलीन !
वह नभ कंपनकारी समीर ।

वह जल प्रवाह उद्धत-अधीर,
जिसने क्षिति के वक्षस्थल को
निज तेज धार से दिया चीर,
कर दिए अनगिनत नगर-ग्राम—
घर बेनिशान कर मग्न-नीर,
होता समाप्त अब वह प्रवाह
तट-शिला-खंड पर क्षीण-क्षीण !
वह जल प्रवाह उद्धत-अधीर ।

मेरे मानस की महा पीर,
जो चली विधाता के सिर पर
गिरने को बनकर वज्र शाप,
जो चली भस्म कर देने को
यह निखिल सृष्टि बन प्रलय ताप,
होती समाप्त अब वही पीर,
लघु-लघु गीतों में शक्तिहीन!
मेरे मानस की महापीर।

———

२३

तूने अभी नहीं दुख पाए।

शूल चुभा, तू चिल्लाता है,
पॉव सिद्ध तब कहलाता है,
इतने शूल चुभे शूलो के चुभने का पग पता न पाए।
तूने अभी नहीं दुख पाए।

बीते सुख की याद सताती ?
अभी बहुत कोमल है छाती,
दुख तो वह है जिसे सहन कर पत्थर की छाती हो जाए।
तूने अभी नहीं दुख पाए।

कठ करुण स्वर मे गाता है,
नयन मे घन घिर आता है,
पन्ना-पन्ना रँग जाता है,
लेकिन, प्यारे, दुख तो वह है,
हाथ न डोले, कठ न बोले, नयन मुँदे हो या पथराए।
तूने अभी नही दुख पाए।

———

२४

ठहरा-सा लगता है जीवन ।

एक ही तरह से घटनाएँ
नयनों के आगे आती हैं,
एक ही तरह के भावों को
दिल के अंदर उपजाती हैं,
एक ही तरह से आह उठा,
आँसू बरसा,
हल्का हो जाया करता मन ।
ठहरा सा लगता है जीवन ।

एक ही तरह की तान कान
के अंदर गूँजा करती है,
एक ही तरह की पंक्ति पृष्ठ
के ऊपर नित्य उतरती है,
एक ही तरह के गीत बना,
सूने में गा,
हल्का हो जाया करता मन ।
ठहरा-सा लगता है जीवन ।

२५

हाय, क्या जीवन यही था।

एक बिजली की झलक मे
स्वप्न औ' रस-रूप दीखा,
हाथ फैले तो मुझे निज हाथ भी दिखता नहीं था।
हाय, क्या जीवन यही था।

एक झोंके ने गगन के
तारको मे जा बिठाया,
मुट्ठियाँ खोलीं सिवा कुछ ककडो के कुछ नहीं था।
हाय, क्या जीवन यही था।

मै पुलक उठता न सुख से
दु:ख से तो क्षुब्ध होता,
इस तरह निर्लिप्त होना लक्ष्य तो मेरा नहीं था।
हाय, क्या जीवन यही था।

२६

लो दिन बीता, लो रात गई।

सूरज ढलकर पच्छिम पहुँचा,
डूबा, संध्या आई, छाई,
सौ संध्या सी वह संध्या थी,
क्यों उठते-उठते सोचा था, दिन में होगी कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

धीमे-धीमे तारे निकले,
धीरे-धीरे नभ में फैले,
सौ रजनी सी वह रजनी थी
क्यों संध्या को यह सोचा था, निशि में होगी कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

चिड़ियाँ चहकीं, कलियाँ महकीं,
पूरब से फिर सूरज निकला,
जैसे होती थी सुबह हुई,
क्यों सोते-सोते सोचा था, होगी प्रात: कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

२७

छल गया जीवन मुझे भी।

देखने में था अमृत वह,
हाथ मे आ मधु गया रह,
और जिह्वा पर हलाहल! विश्व का वचन मुझे भी।
छल गया जीवन मुझे भी।

गीत मे जगती न झूमी,
चीख से दुनिया न घूमी,
हाय, लगते एक से अब गान औ' क्रदन मुझे भी।
छल गया जीवन मुझे भी।

जो द्रवित होता न दुख से,
जो स्रवित होता न सुख से,
श्वास-क्रम से किंतु शापित कर गया पाहन मुझे भी।
छल गया जीवन मुझे भी।

२८

वह साल गया, यह साल चला ।

मित्रों ने वर्ष - वधाई दी,
मित्रों को हर्ष - वधाई दी,
उत्तर भेजा, उत्तर आया,
'नूतन प्रकाश' 'नूतन प्रभात' इत्यादि शब्द कुछ दिन गूँजे,
फिर मंद पड़े, फिर लुप्त हुए,
फिर अपनी गति से काल चला,
वह साल गया, यह साल चला ।

आनेवाला 'कल' 'आज' हुआ,
जो 'आज' हुआ 'कल' कहलाया,
पृथ्वी पर नाचे रात - दिवस,
नभ में नाचे रवि-शशि-तारे, निश्चित गति रखकर वेचारे ।
यह मास गया, वह मास गया,
ऋतु-ऋतु बदली, मौसम बदला,
वह साल गया, यह साल चला ।

झंझा-सनसन, घन घन-गर्जन ,
कोकिल - कूजन, केकी - क्रदन ,
अखबारी दुनिया की हलचल ,
-सग्राम-सधि, दगा-फसाद, व्याख्यान, विविध चर्चा विवाद ,
हम-तुम यह कहकर भूल गए ,
यह बुरा हुआ, यह हुआ भला ,
वह साल गया, यह साल चला ।

२६

यदि जीवन पुन: बना पाता।

मैं करता चकनाचूर न जग का
दुख-संकटमय यंत्र पकड़,
बस कुछ कण के परिवर्तन से क्षण में क्या से क्या हो जाता।
यदि जीवन पुन: बना पाता।

मैं करता टुकड़े-टुकड़े क्यों
युग-युग की चिर-संबद्ध लड़ी,
केवल कुछ पल को अदल-बदल जीवन क्या से क्या हो जाता।
यदि जीवन पुन: बना पाता।

जो सपना है वह सच होता,
क्या निश्चय होता तोष मुझे?
हो सकता है ले वे सपने मैं और अधिक ही पछताता।
यदि जीवन पुन: बना पाता।

३०

स्रष्टा भी यह कहता होगा
हो अपनी कृति से असंतुष्ट,
यह पहले ही सा हुआ प्रलय,
यह पहले ही भी हुई सृष्टि।

इस बार किया था जब मैंने
अपनी अपूर्ण रचना का क्षय,
सब दोष हटा जग रचने का
मेरे मन में था दृढ़ निश्चय।

लेकिन, जब जग में गुण जागे,
तब संग-संग में दोष जगा,
जब पुण्य जगा, तब पाप जगा,
जब राग जगा, तब रोष जगा,

जब ज्ञान जगा, अज्ञान जगा,
पशु जागा, जब मानव जागा,
जब न्याय जगा, अन्याय जगा,
जब देव जगा, दानव जागा।

जग सघर्षों का क्षेत्र बना ,
सग्राम छिडा, सहार बढा ,
कोई जीता, कोई हारा ,
मरता - कटता ससार बढा ।

मेरी पिछली रचनाओं का
जैसे विकास औ' ह्रास हुआ ,
इस मेरी नूतन रचना का
वैसा ही तो इतिहास हुआ ।

यह मिट्टी की हठधर्मी है
जो फिर - फिर मुझको छलती है ,
सौ बार मिटे, सौ बार बने
अपना गुण नही बदलती है ।

यह सृष्टि नष्ट कर नवल सृष्टि
रचने का यदि मैं करूँ कष्ट ,
फिर मुझे यही कहना होगा
अपनी कृति से हो असतुष्ट ,
‘ फिर उसी तरह से हुआ प्रलय ,
फिर उसी तरह से हुई सृष्टि ।’

३१

तुम भी तो मानो लाचारी।

सर्व शक्तिमय थे तुम तब तक,
एक अकेले थे तुम जब तक,
किंतु विभक्त हुई कण - कण में अब वह शक्ति तुम्हारी।
तुम भी तो मानो लाचारी।

गुस्सा कल तक तुमपर आता,
आज तरस में तुमपर खाता,
साधक अगणित आँगन में है सीमित भेंट तुम्हारी।
तुम भी तो मानो लाचारी।

पाना - वाना नहीं कभी है,
ज्ञात मुझे यह बात सभी है,
पर मुझको संतोष तभी है,
दे न सको तुम किंतु बनूँ मैं पाने का अधिकारी।
तुम भी तो मानो लाचारी।

———

३२

मिट्टी से व्यर्थ लडाई है।

नीचे रहती है पावों के,
सिर चढती राजा रावों के
अंबर को भी ढक लेने की यह आज शपथ कर आई है।
मिट्टी से व्यर्थ लडाई है।

सौ बार हटाई जाती है
फिर आ अधिकार जमाती है,
हा हत, विजय यह पाती है,
कोई ऐसा रँग-रूप नहीं जिस पर न अंत को छाई है।
मिट्टी से व्यर्थ लडाई है।

सब को मिट्टीमय कर देगी,
सबको निज में लय कर लेगी,
लो अमर पंक्तियों पर मेरी यह निष्प्रयास चढ आई है।
मिट्टी से व्यर्थ लडाई है।

३३

आज पागल हो गई है रात।

हँस पडी विद्युच्छटा में,
रो पडी रिमझिम घटा में,
अभी भरती आह, करती अभी वज्राघात।
आज पागल हो गई है रात।

एक दिन मैं भी हँसा था,
अश्रु - धारा में फँसा था,
आह उर में थी भरी, था क्रोध-कपित गात।
आज पागल हो गई है रात।

योग्य हँसने के यहाँ क्या,
योग्य रोने के यहाँ क्या,
—क्रुद्ध होने के, यहाँ क्या,
—बुद्धि खोने के, यहाँ क्या,
व्यर्थ दोनों है मुझे हँस-रो हुआ यह ज्ञात।
आज पागल हो गई है रात।

३४

दोनों चित्र सामने मेरे।

(१)

सिर पर बाल बने, घुँघराले,
काले, कडे, बडे, बिखरे-से,
मस्ती, आजादी, बेफिकरी,
बेखबरी के हैं सदेसे।

माथा उठा हुआ ऊपर को,
भौंहों में कुछ टेढापन है,
दुनिया को है एक चुनौती,
कभी नहीं झुकने का प्रण है।

नयनों मे छाया-प्रकाश की
आँख-मिचौनी छिडी परस्पर,
बेचैनी मे, बेसबरी मे,
लुके छिपे हैं सपने सुदर।

दोनों चित्र सामने मेरे।

(२)

सिर पर बाल कढ़े कंघी से
तरतीबी से, चिकने, काले,
जग की रूढ़ि - रीति ने जैसे
मेरे ऊपर फंदे डाले।

भौंहें झुकी हुई नीचे को,
माथे के ऊपर है रेखा,
अंकित किया जगत ने जैसे
मुझपर अपनी जय का लेखा।

नयनों के दो द्वार खुले हैं,
समय दे गया ऐसी दीक्षा,
स्वागत सबके लिए यहाँपर
नहीं किसी के लिए प्रतीक्षा।

चुपके से चाँद निकलता है।

तरु - माला होती स्वच्छ प्रथम,
फिर आभा बढ़ती है थम थम
फिर सोने का चंदा नीचे से उठ ऊपर को चलता है।
चुपके से चाँद निकलता है।

सोना चाँदी हो जाता है,
जस्ता बनकर खो जाता है,
पल-पहले नभ के राजा का अब पता कहाँ पर चलता है?
चुपके से चंदा ढलता है।

अरुणाभा, किरणों की माला,
रवि - रथ बारह घोड़ो वाला,
बादल - बिजली औ इन्द्रधनुष,
तारक - दल, सुंदर शशिवाला,
कुछ काल सभी से मन बहला, आकाश सभी को छलता है।
वश नहीं किसी का चलता है।

३६

चाँद-सितारो, मिलकर गाओ !

आज अधर से अधर मिले हैं,
आज बाँह से बाँह मिली,
आज हृदय से हृदय मिले हैं,
मन से मन की चाह मिली,

चाँद-सितारो, मिलकर गाओ !

चाँद-सितारे मिलकर बोले,
कितनी बार गगन के नीचे
प्रणय-मिलन व्यापार हुआ है,
कितनी बार धरा पर प्रेयसि-
प्रियतम का अभिसार हुआ है !

चाँद सितारे मिलकर बोले ।

× × × ×

चाँद - सितारो, मिलकर रोओ !

आज अधर से अधर अलग है,
आज बाँह से बाँह अलग,
आज हृदय से हृदय अलग है,
मन से मन की चाह अलग;

चाँद - सितारो मिलकर रोओ !

चाँद - सितारे मिलकर बोले,

कितनी बार गगन के नीचे
अटल प्रणय के बंधन टूटे,
कितनी बार धरा के ऊपर
प्रेयसि-प्रियतम के प्रण टूटे !

चाँद - सितारे मिलकर बोले।

———

३७

मैं था, मेरी मधुबाला थी,
अधरों मे थी प्यास भरी,
नयनों मे थे स्वप्न सुनहले,
कानों में थी स्वर लहरी,
सहसा एक सितारा बोला, 'यह न रहेगा बहुत दिनों तक!'

मैं था, औ' मेरी छाया थी,
अधरों पर था खारा पानी,
नयनों पर था तम का पर्दा,
कानो मे थी कथा पुरानी,
सहसा एक सितारा बोला, 'यह न रहेगा बहुत दिनों तक!'

अनासक्त था मैं सुख-दुख से,
अधरों को कटु-मधु समान था,
नयनो को तम-ज्योति एक-सी,
कानों को सम रुदन-गान था,
सहसा एक सितारा बोला, 'यह न रहेगा बहुत दिनों तक!'

३८

इतने मत उन्मत्त बनो।

जीवन मधुशाला में मधु पी
बनकर तन-मन-मतवाला,
गीत सुनाने लगा झूमकर
चूम-चूमकर मैं प्याला—
शीश हिलाकर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत उन्मत्त बनो।

इतने मत संतप्त बनो।
जीवन मरघट पर अपने सब
अरमानों की कर होली,
चला राह में रोदन करता
चिता राख से भर झोली—
शीश हिलाकर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत संतप्त बनो।

इतने मत उत्तप्त बनो।

मेरे प्रति अन्याय हुआ है

ज्ञात हुआ मुझको जिस क्षण,

करने लगा अग्नि-आनन हो

गुरु गर्जन गुरुतर तर्जन,

शीश हिलाकर दुनिया बोली,

पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह

इतने मत उत्तप्त बनो।

२९

मेरा जीवन सबका साखी।

कितनी बार दिवस बीता है,
कितनी बार निशा बीती है,
कितनी बार तिमिर जीता है,
कितनी बार ज्योति जीती है !
मेरा जीवन सबका साखी।

कितनी बार सृष्टि जागी है,
कितनी बार प्रलय सोया है,
कितनी बार हँसा है जीवन,
कितनी बार विवश रोया है !
मेरा जीवन सब का साखी।

कितनी बार विश्व-घट मधु से
पूरित होकर तिक्त हुआ है,
कितनी बार भरा भावों से
कवि का मानस रिक्त हुआ है।
मेरा जीवन सब का साखी।

कितनी बार विश्व कटुता का
हुआ मधुरता मे परिवर्तन,
कितनी बार मौन की गोदी
मे सोया है कवि का गायन।
मेरा जीवन सब का साखी।

४०

तब तक समझूँ कैसे प्यार,

अधरों से जब तक न कराए
प्यारी उस मधुरस का पान,
जिसको पीकर मिटे सदा को
अपनी कटु सज्ञा का ज्ञान,
मिटे साथ मे कटु ससार,
तब तक समझूँ कैसे प्यार।

तब तक समझूँ कैसे प्यार,
बाहो मे जब तक न सुलाए
प्यारी, अत रहित हो रात,
चाँद गया कब सूरज आया—
इनके जड क्रम से अज्ञात,
सेज चिता की साज-सँवार,
तब तक समझूँ कैसे प्यार।

तब तक समझूँ कैसे प्यार ,
प्राणों में जब तक न मिलाए
प्यारी प्राणों की झनकार,
खड-खड हो तन की वीणा
स्वर उठ जाएँ तजकर तार,
स्वर-स्वर मिल हो एकाकार,
तब तक समझूँ कैसे प्यार ।

४१

कौन मिलनातुर नहीं है ?

आक्षितिज फैली हुई मिट्टी
निरंतर पूछती है,
कब कटेगा, बोल, तेरी
चेतना का शाप,
और तू हो लीन मुझमें फिर बनेगा शांत ?
कौन मिलनातुर नहीं है ?

गगन की निर्बंध बहती वायु
प्रतिपल पूछती है,
कब गिरेगी टूट तेरी
देह की दीवार,
और तू हो लीन मुझमें फिर बनेगा मुक्त ?
कौन मिलनातुर नहीं है ?

सर्व व्यापी विश्व का व्यक्तित्व
प्रतिक्षण पूछता है,
कब मिटेगा बोल तेरा
अहं का अभिमान,
और तू हो लीन मुझमें फिर बनेगा पूर्ण ?
कौन मिलनातुर नहीं है ?

४२

कभी, मन अपने को भी जाँच ।

नियति पुस्तिका के पन्नो पर,
मूँद न आँखे, भूल दिखाकर,
लिखा हाथ से अपने तूने जो उसको भी बाँच ।
कभी, मन, अपने को भी जाँच ।

सोने का संसार दिखाकर,
दिया नियति ने कंकड़-पत्थर,
सही, सँजोया कंचन कहकर तूने कितना काँच ?
कभी, मन, अपने को भी जाँच ।

जगा नियति ने भीषण ज्वाला,
तुझको उसके भीतर डाला,
ठीक, छिपी थी तेरे दिल के अंदर कितनी आँच ?
कभी, मन, अपने को भी जाँच ।

४३

यह वर्षा ऋतु की सन्ध्या है,
मैं बरामदे में कुरसी पर
घिरा अँधेरे से बैठा हूँ
बँगले के स्विच ऑफ सभी कर,
उठे आज परवाने इतने,
कुछ प्रकाश में करना दुष्कर,
नहीं कहीं जा भी सकता हूँ
होती बूँदा-बाँदी बाहर।

उधर कोठरी है नौकर की
एक दीप उसमें बलता है,
सभी ओर से उसमें आकर
परवाना का दल जलता है,
ज्योति दिखाता ज्वाला देता
दिया पतिंगों को छलता है,
नहीं पतिंगो का दीपक के
ऊपर कोई वश चलता है।

है दिमाग में चक्कर खाती
एक फ़ारसी की रुबाई,
शायद यह इक़बाल-रचित है
किसी मित्र ने कभी सुनाई,
मेरे मनोभाव ने उसमें
अपनी है कुछ-कुछ परछाई.—
'दिल दीवाना, दिल परवाना,
तन दीपक की पर मँडराना,
कब सीखेगा पंथ सयाना
उस पथ पर जो है मर्दाना।
ज्वाला है खुद तेरे अंदर,
जलना उसमें सीख निरंतर,
उस ज्वाला में जल क्या पाना
जो बेगाना, जो बेगाना।'*

---

*दिला नादानिए परवाना ताके,
नगीरी शान मर्दाना ताके,
यके खुद रा बसोज़े ख़ेशतन सोज़,
तवाफ़े आतिश बेगाना ताके।

४४

यह दीपक है, यह परवाना।

ज्वाल जगी है, उसके आगे
जलनेवालों का जमघट है,
भूल करे मत कोई कहकर,
यह परवानों का मरघट है,
एक नहीं है दोनों मरकर जलना औ' जलकर मर जाना।
यह दीपक है, यह परवाना।

इनकी तुलना करने को कुछ
देख न, हे मन, अपने अंदर,
वहाँ चिता चिंता की जलती,
जलता है तू शव-सा बनकर,
यहाँ प्रणय की होली मे है खेल जलाना या जल जाना।
यह दीपक है, यह परवाना।

लेनी पड़े अगर ज्वाला ही
तुझको जीवन मे, मेरे मन,
तो न मृतक ज्वाला मे जल तू
कर सजीव मे प्राण समर्पण,
चिता-दग्ध होने से बेहतर है होली में प्राण गँवाना।
यह दीपक है, वह परवाना।

४५

वह तितली है, यह बिस्तुइया ।

यह काली कुरूप है कितनी !
वह सुंदर सुरूप है कितनी !
गति से और भयंकर लगती यह, उसका है रूप निखरता ।
वह तितली है, यह बिस्तुइया ।

बिस्तुइया के मुँह में तितली,
चीख हृदय से मेरे निकली,
प्रकृति पुरी में यह अनीति क्यों, बैठा-बैठा विस्मय करता ।
वह तितली थी, यह बिस्तुइया ।

इस अँधेर नगर के अंदर
—दोनों में ही सत्य बराबर,
बिस्तुइया की उदर-क्षुधा औ' तितली के पर की सुंदरता ।
वह तितली थी, यह बिस्तुइया,

४६

क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

तेरे जीवन की क्यारी मे
कुछ उगा नहीं, मैंने माना,
पर सारी दुनिया मरुथल है
बतला तूने कैसे जाना ?
तेरे जीवन की सीमा तक
क्या जगती का आँगन समाप्त ?
क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

तेरे जीवन की क्यारी मे
फल-फूल उगे, मैंने माना,
पर सारी दुनिया मधुवन है
बतला तूने कैसे जाना ?
तेरे जीवन की सीमा तक
क्या जगती का मधुवन समाप्त ?
क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

जब तू अपने दुख में रोता,
दुनिया सुख से गा सकती है,
जब तू अपने सुख में गाता,
वह दुख से चिल्ला सकती है,
तेरे प्राणों के स्पंदन तक
क्या जगती का स्पंदन समाप्त?
क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त?

४७

कितना कुछ सह लेता यह मन !

कितना दुख-संकट आ गिरता
अनदेखी - जानी दुनिया से,
मानव सब कुछ सह लेता है कष्ट, पिछले कर्मों का बंधन ।
कितना कुछ सह लेता यह मन !

कितना दुख-संकट आ गिरता
इस देखी - जानी दुनिया से,
मानव यह कष्ट सह लेता है दुख संकट जीवन का शिक्षण ।
कितना कुछ सह लेता यह मन !

कितना दुख संकट आ गिरता
मानव पर अपने हाथों से,
दुनिया न कहीं उपहास करे, सब कुछ करता है मौन सहन ।
कितना कुछ सह लेता यह मन !

४८

हृदय सोच यह बात भर गया !

उर में चुभनेवाली पीडा,
गीत-गध मे कितना अतर !
कवि की आहो मे था जादू काँटा बनकर फूल झर गया।
हृदय सोच यह बात भर गया !

यदि अपने दुख मे चिल्लाता,
गगन काँपता, धरती फटती,
एक गीत से कठ रूँधकर मानव सब कुछ सहन कर गया।
हृदय सोच यह बात भर गया !

कुछ गीतो को लिख सकते है,
गा सकते है कुछ गीतो को,
दोनों से था वञ्चित जो वह जिया किस तरह और मर गया।
हृदय सोच यह बात भर गया !

४६

करुण अति मानव का रोदन।

ताज, चीन-दीवार दीर्घ जिन
हाथों के उपहार,
वही सँभाल नहीं पाते है
अपने सिर का भार !
गडे जाते भू मे लोचन ! करुण अति मानव का रोदन।

देव-देश और परी-पुरी जिन
नयनों के वरदान,
जिनमे फैले, फूले, भूले
कितने स्वप्न महान,
गिराते खारे लघु जल कण ! करुण अति मानव का रोदन।

जो मस्तिष्क खोज लेता है
अर्थ गुप्त से गुप्त,
स्रष्टा, सृष्टि और सर्जन का
कहाँ हो गया लुप्त ?
नहीं धरता है धीरज मन ! करुण अति मानव का रोदन।

५०

अकेलेपन का बल पहचान।

शब्द कहाँ जो तुझको टोके,
हाथ कहाँ जो तुझको रोके,
राह वही है, दिशा वही, तू करे जिधर प्रस्थान।
अकेलेपन का बल पहचान।

जब तू चाहे तब मुसकाए,
जब चाहे तब अश्रु बहाए,
राग वही तू जिसमें गाना चाहे अपना गान।
अकेलेपन का बल पहचान।

तन-मन अपना, जीवन अपना,
अपना ही जीवन का सपना,
जहाँ और जब चाहे कर दे तू सब कुछ बलिदान।
अकेलेपन का बल पहचान।

५१

क्या करूँ सवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

मैं दुखी जब-जब हुआ
सवेदना तुमने दिखाई,
मैं कृतज्ञ हुआ हमेशा,
रीति दोनो ने निभाई,
किंतु इस आभार का अब
हो उठा है बोझ भारी ,
क्या करूँ सवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

एक भी उच्छ्वास मेरा
हो सका किस दिन तुम्हारा ?
उस नयन मे बह सकी कब
इस नयन की अश्रु-धारा ?
सत्य को मूँदे रहेगी
शब्द की कब तक पिटारी ?
क्या करूँ सवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

कौन है जो दूसरे को

दुःख अपना दे सकेगा ?

कौन है जो दूसरे से

दुःख उसका ले सकेगा ?

क्यों हमारे बीच धोखे

का रहे व्यापार जारी ?

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?

क्या करूँ ?

क्यों न हम लें मान हम हैं

चल रहे ऐसी डगर पर,

हर पथिक जिसपर अकेला,

दुःख नहीं बँटते परस्पर,

दूसरों की वेदना में

वेदना जो है दिखाता,

वेदना से मुक्ति का निज

हर्ष केवल वह छिपाता,

तुम दुखी हो तो सुखी मैं

विश्व का अभिशाप भारी,

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?

क्या करूँ ?

५२

उनके प्रति मेरा धन्यवाद,

कहते थे मेरी नादानी
जो मेरे रोने-धोने को,
कहते थे मेरी नासमझी
जो मेरे धीरज खोने को,

मेरा अपने दुख के ऊपर
उठने का व्रत उनका प्रसाद,
उनके प्रति मेरा धन्यवाद।

जो क्षमा नहीं कर सकते थे
मेरी कुछ दुर्बलताओं को,
जो सदा देखते रहते थे
उनमें अपने ही दावों को,

मेरा दुर्बलता के ऊपर
उठने का व्रत उनका प्रसाद,
उनके प्रति मेरा धन्यवाद।

कादरपन देखा करते थे
जो मेरी करुण कहानी में,
वन्ध्यापन देखा करते थे
जो मेरी विह्वल वाणी में,

मेरा नूतन स्वर में उठकर
गाने का व्रत उनका प्रसाद,
उनके प्रति मेरा धन्यवाद ।

———

५३

जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन।

इसपर जो थी लिखी कहानी,
वह अब तुझको याद जबानी,
बार-बार पढकर क्यों इसको व्यर्थ गँवाता जीवन के क्षण।
जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन।

इसपर लिखा हुआ हर अक्षर,
जमा हुआ है बनकर 'अक्षर',
किंतु प्रभाव हुआ जो तुझपर उसमें अब करले परिवर्तन।
जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन।

यहीं नहीं यह कथा खतम है,
मन की उत्सुकता दुर्दम है,
चाह रही है देखे आगे,
ज्योति जगी या सोया तम है।
रोक नहीं तू इसे सकेगा, यह अदृष्ट का है आकर्षण।
जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन।

५४

काल क्रम से—

जिसके आगे झुका गगन

जिसके आगे पर्वत झुकते—

प्राणों का त्याग धन-कंचन

सब का अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है।

उसका भी है कुछ आकर्षण।

नियति नियम से—

जिसको समझा सुकरात नहीं,

जिसको बूझा बुकरात नहीं—

किस्मत का त्याग धन कंचन

सब का अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है,

उसका भी है कुछ आकर्षण।

आत्म भ्रम से—

जिसमें योगी ठग जाते हैं,

गुरु ज्ञानी धोखा खाते हैं—

स्वप्नों का प्यारा धन-कंचन

सहसा अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है,

उसका भी है कुछ आकर्षण।

कालक्रम में नियति नियम में आत्मभ्रम से,

रह न गया जो मिल न सका जो, सच न हुआ जो,

प्रिय जन अपना, प्रिय धन अपना, अपना सपना,

इन्हें छोड़कर जीवन जितना,

उसमें भी आकर्षण कितना!

५५

नर नारीपन

तू बंद किए अपने किवाड़
बैठा रहता है इंतज़ार,
कोई आए,
तेरा दरवाज़ा खटकाए,
मिलने को बाहें फैलाए,
तुझसे हमदर्दी दिखलाए,
आँसू पोंछे औ' कहे, हाय तू जग में कितना दुखी दीन।

ओ नर चेतन!
तू अपने मन की नारी को
अस्वाभाविक बीमारी को,
उठ दूर हटा,
तू अपने मन का पुरुष जगा,
जो बेशरमाए बाहर जाए,
शोर मचाए हँसे हँसाए,
और उनको जो बैठे हैं मुँह लटकाए, उदासीन।

५६

वह व्यक्ति रचा,

जो लेट गया मधुबाला की
गोदी में सिर धरकर अपना,
हो सत्य गया जिसका सहसा
कोई मन का सुंदर सपना,
दी डुबा जगत की चिंताएँ
जिसने मदिरा की प्याली में
जीवन का सारा रस पाया
जिसने अधरों की लाली में,
मधुबाला की कंकण-ध्वनि में
जो भूला जगती का क्रंदन,
जो भूला जगती की कटुता
उसके आँचल से मूँद नयन,
जिसने अपने सब ओर लिया
कल्पित स्वर्गों का लोक बसा,
कर दिया मग्न उसको जिसने
वाणी से मधु बरसा-बरसा।

वह व्यक्ति रहा,

जो बैठ गया दिन ढलने पर
दिन भर चलकर सूने पथ पर,
खोकर अपने प्यारे साथी
अपनी प्यारी संपति खोकर,
बस अंधकार ही अंधकार
रह गया शेष जिसके समीप,
जिसके जलमय लोचन जैसे
झंझा से हो दो बुझे दीप,
टूटी आशाओं, स्वप्नों से
जिसका अब केवल नाता है,
जो अपना मन बहलाने को
एकाकीपन में गाता है,
जिसके गीतों का करुण शब्द,
जिसके गीतों का करुण राग
पैदा करने में है समर्थ
आशा के मन में भी विराग।

वह व्यक्ति बना,

जो खड़ा हो गया है तनकर
पृथ्वी पर अपने पटक पाँव,

डाले फूले वक्षस्थल पर
मासल भुजदंडों का दबाव,
जिसकी गर्दन में भरा गर्व,
जिसके ललाट पर स्वाभिमान,
दो दीर्घ नेत्र जिसके जैसे
दो अंगारे जाज्वल्यमान,
जिसकी क्रोधातुर श्वासों में
दोनों नथने हैं उठे फूल,
जिसकी भौंहों में, मूछों में
हैं नहीं बाल, उग उठे शूल,
दृढ़ दंत-पंक्तियों में जकड़ा
कोई ऐसा निश्चय प्रचंड,
फट जाय वज्र भी अगर बीच
हो जाय टूटकर खंड-खंड!

———

वेदना भगा,

जो उर के अंदर आते ही
सुरसा-सा वदन बढ़ाती है,
सारी आशा अभिलाषा को
पल के अंदर खा जाती है,
पी जाती है मानस का रस
जीवन शव-सा कर देती है,
दुनिया के कोने-कोने को
निज क्रंदन से भर देती है,
इसकी संक्रामक वाणी को
जो प्राणी पलभर सुनता है,
वह सारा साहस-बल खोकर
युग-युग अपना सिर धुनता है,
यह बड़ी अशुचि रुचि वाली है
संतोष इसे तब होता है,
जब जग इसका साथी बनकर
इसके रोदन में रोता है।

वेदना जगा,

जो जीवन के अंदर आकर
इस तरह हृदय में जाय व्याप,
बन जाय हृदय होकर विशाल
मानव दुख मापक दंड-माप,
जो जले मगर जिसकी ज्वाला
प्रज्वलित करे ऐसा विरोध,
जो मानव के प्रति किए गए
अत्याचारों का करे शोध,
पर अगर किसी दुर्बलता
वह ताप न अपना रख पाए,
तो अपने बुझने के पहले
औरों में आग लगा जाए,
यह स्वस्थ आग यह स्वस्थ जलन
जीवन में सबको प्यारी हो,
इसमें जल निर्मल होने का
मानव-मानव अधिकारी हो।

५८

भीग रहा है भुवि का आँगन ।

भीग रहे हैं पल्लव के दल,
भीग रही हैं आनत डालें,
भीगे तिनकों के खोतों में भीग रहे हैं पंछी अनमन ।
भीग रहा है भुवि का आँगन ।

भीग रही है महल-झोपड़ी,
सुख-सूखे में महलों वाले,
किंतु झोपड़ी के नीचे हैं भीगे कपड़े, भीगे लोचन ।
भीग रहा है भुवि का आँगन ।

बरस रहा है भू पर बादल,
बरस रहा है जग पर सुख-दुख,
सब को अपना-अपना, कवि को
सब का ही दुख, सब का ही सुख,
जग-जीवन के सुख-दुःखों से भीग रहा है कवि का तन-मन ।
भीग रहा है भुवि का आँगन ।

तू तो जलता हुआ चला जा।

जीवन का पथ नित्य तमोमय,
भटक रहा इंसान भग-भय,
पल भर सही, पग भर को ही कुछ को राह दिखाजा।
तू तो जलता हुआ चला जा।

जला हुआ तू ज्योति रूप है,
बुझा हुआ केवल कुरूप है,
शेष रहे जब तक जलने को कुछ भी तू जलता जा।
तू तो जलता जा, चलता जा।

जहाँ बनी भावों की क्यारी,
स्वप्न उगाने की तैयारी,
अपने उर की राख-राशि को वहीं-वहीं बिखराजा।
तू तो जलकर भी चलता जा।

६०

मैं जीवन की शका महान।

युग-युग सचालित राह छोड,
युग-युग सचित विश्वास तोड,
मैं चला आज युग - युग सेवित पाखड - रूढि से बैर ठान।
मै जीवन की शका महान।

होगी न हृदय मे शाति व्याप्त,
कर लेता जबतक नहीं प्राप्त,
जग-जीवन का कुछ नया अर्थ, जग-जीवन का कुछ नया ज्ञान।
मै जीवन की शका महान।

गहनाधकार मे पॉव धार,
युग नयन फाड, युग कर पसार,
उठ-उठ, गिर-गिरकर बार बार,
मैं खोज रहा हूँ अपना पथ, अपनी शका का समाधान।
मै जीवन की शका महान।

६१

तन मे ताकत हो तो आओ।

पथ पर पडी हुई चट्टाने,
दृढतर है वीरों की आने,
पहले-सी अब कठिन कहाँ है—ठोकर एक लगाओ।
तन मे ताकत हो तो आओ।

राह रोक है खडा हिमालय,
यदि तुममे दम, यदि तुम निर्भय,
खिसक जायगा कुछ निश्चय है—घूँसा एक लगाओ।
तन मे ताकत हो तो आओ।

रस की कमी नही है जग मे,
बहता नहीं मिलेगा मग मे,
लोहे के पजे से जीवन की यह लता दबाओ।
तन मे ताकत हो तो आओ।

६२

उठ समय से मोरचा ले।

जिस धरा से यत्न युग-युग
कर उठे पूर्वज मनुज के,
हो मनुज संतान तू उसपर पड़ा है, शर्म खाले।
उठ समय से मोरचा ले।

देखता कोई नहीं है
निर्बलों की यह निशानी,
लोचनों के बीच आँसू औ' पगों के बीच छाले।
उठ समय से मोरचा ले।

धूलि धूसर वस्त्र मानव—
देह पर फबते नहीं हैं,
देह के ही रक्त से तू देह के कपड़े रँगाले।
उठ समय से मोरचा ले।

६३

तू कैसे रचना करता है ?
तू कैसी रचना करता है ?

अपने आँसू की बूँदों में—
अविरल आँसू की बूँदों में,
विह्वल आँसू की बूँदों में,
कोमल आँसू की बूँदों में,
निर्बल आँसू की बूँदों में—

लेखनी डुबाकर बार-बार,
लिख छोटे - छोटे गीतों को
गाता है अपना गला फाड़,
करता इनका जग मे प्रचार।

इनको ले बैठ अकेले मे
तुझसे बहुतेरे दुखी - दीन
खुद पढते है, खुद सुनते हैं,
तुझसे हमदर्दी दिखलाते,
अपनी पीडा को दुलराते,
कहते हैं, 'जीवन है मलीन,

यदि बचने का कोई उपाय
तो वह केवल है एक मरण ।'

तू ऐसे अपनी रचना कर,
तू ऐसी अपनी रचना कर ।
जग के आँसू के सागर में—
जिसमें विक्षोभ छलकता है,
जिसमें विद्रोह बलकता है,
जय का विश्वास ललकता है,
नवयुग का प्रात झलकता है—
तू अपना पूरा कलम डुबा,
लिख जीवन की ऐसी कविता,
गा जीवन का ऐसा गायन,
गाए सँग में जग का कण-कण ।

जो इसको जिह्वा पर लाए,
वह दुखिया जग का बल पाए,
दुख का विधान रचने वाला,
चाहे हो विश्व-नियता ही,

इसको सुनकर थर्रा जाए।
घोषणा करे इसका गायक,
'जीवन है जीने के लायक,
जीवन कुछ करने के लायक,
जीवन है लड़ने के लायक,
जीवन है मरने के लायक,
जीवन के हित बलि कर जीवन।'

६४

पगु पर्वत पर चढोगे।

चोटियाँ इस गिरि गहन की
बात करती है गगन से,
और तुम सम भूमि पर चलना अगर चाहो गिरोगे।
पगु पर्वत पर चढोगे।

तुम किसी की भी कृपा का
बल न मानोगे सफल हो?
औ' विफल हो दोष अपना सिर न औरों के मढोगे?
पगु पर्वत पर चढोगे।

यह इरादा नप अगर सकता
शिखर से उच्च होता,
गिरि झुकेगा ही इसे ले जबकि तुम आगे बढोगे।
पगु पर्वत पर चढोगे।

६५

गिरि शिखर , गिरि शिखर, गिरि शिखर !

जबकि ध्येय बन चुका,
जबकि उठ चरण चुका,
स्वर्ग भी समीप देख—मत ठहर, मत ठहर, मत ठहर !
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !

सग छोड सब चले,
एक तू रहा भले,
किंतु शून्य पथ देख—मत सिहर, मत सिहर, मत सिहर !
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !

पूर्ण हुआ एक प्रण,
तन मगन, मन मगन,
कुछ न मिले छोडकर—पत्थर, पत्थर, पत्थर !
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !

६६

यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

तूने मदिरा की धारा पर
स्वप्नों की नाव चलाई है,
तूने मस्ती की लहरों पर
अपनी वाणी लहराई है।
यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

तूने आँसू की धारा में
नयनों की नाव डुबाई है,
तूने करुणा की सरिता की
डुबकी ले थाह लगाई है।
यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

अब स्वेद-रक्त का सागर है,
उस पार तुझे ही जाना है,
उस पार बसी है जो दुनिया
उसका संदेश सुनाना है।
अब देख न डर, अब देर न कर,
तूने क्या हिम्मत पाई है!
यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

६७

बजा तू वीणा और प्रकार।

कल तक तेरा स्वर एकाकी,
मौन पड़ी थी दुनिया बाकी,
तेरे अतर की प्रतिध्वनि थी तारों की झनकार।'
बजा तू वीणा और प्रकार।

आज दबा जाता स्वर तेरा,
आज कँपा जाता कर तेरा,
बढता चला आ रहा है उठ जग का हाहाकर।'
बजा तू वीणा और प्रकार।

क्या कर की वीणा धर देगा,
या नूतन स्वर से भर देगा,
जिसमें होगा एक राग तेरा, जग का चीत्कार।'
बजा तू वीणा और प्रकार।

यह एक रश्मि—

पर छिपा हुआ है इसमें ही
ऊषा बाला का अरुण रूप,
दिन की सारी आभा अनूप,
जिसकी छाया मे सजता है
जग राग-रग का नवल साज।

यह एक रश्मि!

यह एक विंदु—

पर छिपा हुआ है इसमें ही
जल-श्यामल मेघों का वितान,
विद्युत बाला का वज्र गान,
जिसको सुनकर फैलाता है
जग पर पावस निज सरस राज।

यह एक विंदु!

वह एक गीत—

जिसमें जीवन का नवल वेश,
जिसमें जीवन का नव संदेश,
जिसको सुनकर जग वर्तमान
कर सकता नवयुग में प्रवेश,
किस कवि के उर में छिपा आज?

वह एक गीत!

६६

जब जब मेरी जिह्वा डोले।

स्वागत जिनका हुआ समर में,
वक्षस्थल पर, सिर पर, कर में,
युग-युग से जो भरे नहीं हैं मानव के घावों को खोले।
जब जब मेरी जिह्वा डोले।

यदि न बन सके उनपर मरहम,
मेरी रसना दे कम से कम
इतना तो रस जिसमें मानव अपने इन घावों को धोले।
जब जब मेरी जिह्वा डोले।

यदि न सके दे ऐसे गायन,
बहले जिनको गा मानव-मन,
शब्द करे ऐसे उच्चारण,
जिनके अंदर से इस जग के शापित मानव का स्वर बोले।
जब जब मेरी जिह्वा डोले।

७०

तू एकाकी तो गुनहगार ।

अपने प्रति होकर दयावान
तू करता अपना अश्रु पान,
जब खडा माँगता दग्ध विश्व तेरे नयनों की सजल धार ।
तू एकाकी तो गुनहगार ।

अपने अंतस्तल की कराह
पर तू करता है त्राहि-त्राहि,
जब ध्वनित धरणि पर अंबर में चिर-विकल विश्व का चीत्कार
तू एकाकी तो गुनहगार ।

तू अपने में ही हुआ लीन,
बस इसीलिए तू दृष्टिहीन,
इससे ही एकाकी-मलीन,
इससे ही जीवन - ज्योति - क्षीण,
अपने से बाहर निकल देख है खडा विश्व बाहे पसार ।
तू एकाकी तो गुनहगार ।

७१

गाता विश्व व्याकुल राग।

है स्वरों का मेल छूटा,
नाद उखड़ा ताल टूटा,
लो रुदन का कंठ फूटा,
सुप्त युग-युग वेदना सहसा पड़ी है जाग।
गाता विश्व व्याकुल राग।

वीण के निज तार कसकर
और अपना साधकर स्वर
गान के हित आज तत्पर
तू हुआ था, किंतु अपना ध्येय गायक त्याग।
गाता विश्व व्याकुल राग।

उँगलियाँ तेरी रुकेंगी,
बज नहीं वीणा सकेगी,
राग निकलेगा न मुख से,
यत्न कर साँसे थकेंगी,
करुण क्रंदन में जगत के आज ले निज भाग।
गाता विश्व व्याकुल राग।

बच्चन की

अन्य प्रकाशित रचनाओं का विवरण

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

एकांत संगीत

('आकुल अंतर' के ठीक पहले की रचना)

यह कवि की १९३८-३९ में लिखित एक सौ गीतों का संग्रह है। देखने में यह गीत 'निशा निमंत्रण' के गीतों की शैली में प्रतीत होते हैं, परंतु पद, पंक्ति, तुक, मात्रा आदि में अनेक स्थानों पर स्वतंत्रता लेकर कवि ने इनकी एक-रूपता में भी विभिन्नता उत्पन्न की है।

कवि ने जिस एकाकीपन का अनुभव निशा निमंत्रण मे मुखरित किया था उसकी यहाँ चरम सीमा पहुँच गई है। 'कल्पित साथी' भी साथ मे नहीं है। कवि के हृदय में वेदना इतनी घनीभूत हो गई है कि उसे बताने के लिए वातावरण की सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती। गीतो का क्रम रचना-क्रम के अनुसार होने से कवि की भावनाओं का जैसा स्वाभाविक चित्र यहाँ आपको मिलेगा वैसा और किसी कृति में नहीं।

कवि ने जीवन के एकांत मे क्या देखा, क्या अनुभव किया, क्या सोचा, यदि इसे जानना चाहते हैं तो एकांत संगीत को लेकर एकांत में बैठ जाइए।

दूसरा संस्करण नए ठाट-बाट से छपकर तैयार है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद

निशा निमंत्रण

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की १९३७-३८ में लिखित एक कहानी और एक सौ गीतों का सग्रह है। 'निशा निमत्रण' के गीतों से बच्चन की कविता का एक नया युग आरभ होता है। १३-१३ पक्तियों मे लिखे गए ये गीत विचारों की एकता, गठन और अपनी सपूर्णता में अग्रेज़ी के सॉनेट्स की समता करते है।

'निशा निमत्रण' के गीत सायकाल से आरभ होकर प्रातःकाल समाप्त होते हैं। रात्रि के अधकारपूर्ण वातावरण से अपनी अनुभूतियों को रजित कर बच्चन ने गीतो की जो शृखला तैयार की है वह आधुनिक हिंदी साहित्य के लिए सर्वथा मौलिक वस्तु है। गीत एक दूसरे से इस प्रकार जुडे हुए हैं कि यह सौ गीतो का सग्रह न होकर सौ गीतों का एक महागीत है, शत दलों का एक शतदल है।

इसका सौंदर्य देखना हो तो शीघ्र ही अपनी प्रति मँगा लीजिए।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुशाला

(पाँचवा संस्करण)

यह कवि की १६३३-३४ में लिखित १३५ रुबाइयों का सग्रह है हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रतीकों और इन्हीं से मिलने वाले कुछ गिनती के तुको को लेकर बच्चन ने अपने कितने भावों और विचारों को इन रुबाइयों में भर दिया है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभी मधुशाला उनके मुह से सुनी या स्वय पढी हैं। आधुनिक खडी बोली की कोई भी पुस्तक मधुशाला के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। अब समालोचकों ने स्वीकार कर लिया है कि मधुशाला में सौंदर्य के माध्यम से क्राति का जोरदार सदेश दिया गया है।

कवि ने इसे रुबाइयात उमर ख़ैयाम का अनुवाद करने के पश्चात् लिखा था इस कारण से उसके बाहरी रूपक से प्रभावित अवश्य हुए हैं परतु यह भीतर से सर्वथा स्वानुभूत और मौलिक रचना है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक भारतीय युवक के हृदय से होती है।

भाव, भाषा, लय और छद एक दूसरे के इतने अनुरूप बन पड़े हैं कि हिंदी से अपरिचित व्यक्ति भी उसका वैसा ही आनद लेते हैं जैसा कि हिदी से सुपरिचित व्यक्ति। आज ही इसे लेकर बैठ जाइए और इसकी मस्ती से झूम उठिए।

—लीडर प्रेस, प्रयाग।

मधुबाला

(चौथा संस्करण)

यह कवि की १९३४-३५ में लिखित 'मधुबाला' 'मालिक-मधुशाला', "मधुपायी, 'पथ का गीत', 'सुराही', 'प्याला', 'हाला' 'जीवन तरुवर', 'प्यास', 'बुलबुल', 'पाटल माल' 'इस पार-उस पार', 'पाँच पुकार', "पगध्वनि' और 'आत्म परिचय' शीर्षक कविताओं का सग्रह है।

मधुशाला के पश्चात लिखे गए इन नाटकीय गीतों में मधुबाला और मधुपायी ही नहीं प्याला, हाला और सुराही आदि भी सजीव होकर अपना अपना गीत गाने लगे हैं। कवि को मधुशाला का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं रह गई, वह स्वय मस्त होकर आत्म-गान करने लगी है। इन गीतों में आप पाएँगे विचारो की नवीनता, भावों की तीव्रता, कल्पना की प्रचुरता और सुस्पष्टता, भाषा की स्वाभाविकता, छदों का स्वछद सगीतात्मक प्रवाह और इन सब के ऊपर वह सूक्ष्म शक्ति जो प्रत्येक हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती कवि का व्यक्तित्व। इन्हीं गीतों के लिए प्रेमचद जी ने लिखा था कि इनमें बच्चन का अपना व्यक्तित्व है, अपनी शैली है, अपने भाव हैं और अपनी फिलासफ़ी है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

मधु कलश

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की १९३५-३६ में लिखित 'मधुकलश', 'कवि की वासना', 'सुषमा', 'कवि की निराशा', 'री हरियाली', 'कवि का गीत', 'पथ भ्रष्ट', 'कवि का उपहास', 'माँझी', 'लहरों का निमत्रण', 'मेघदूत के प्रति' और 'गुलहज़ारा' शीर्षक कविताओं का सग्रह है।

आधुनिक समय में समालोचकों द्वारा बच्चन की कविताओं का जितना विरोध हुआ है सभवतः उतना और किसी कवि का नहीं हुआ। उन्होंने अपने विरोधियो की कटु आलोचनाओं का उत्तर कभी नहीं दिया परतु उससे जो उनकी मानसिक प्रतिक्रिया हुई है उसे अवश्य काव्य मे व्यक्त किया है। उत्तर प्रत्युत्तर में जो बात कटु हो जाती वही कविता मे किस प्रकार मधुर हो गई है, 'मधु कलश' की अधिकाश कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कवि ने चारो ओर के आक्रमण के बीच किन भावनाओं और विचारों से अपनी सत्ता को स्थिर रक्खा है उसे देखना हो तो आप 'मधु कलश' की कविताएँ पढिए। इनके अन्दर साहित्य के आलोचकों को ही नहीं जीवन के आलोचकों को भी उत्तर है, कवि के लिए ही नही मानवता के लिए भी सदेश है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद

तेरा हार

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की सन १६२९-३० में लिखित, स्वीकृत, आशे, नैराश्य, कीर, झडा, बदी, बदी मित्र, कोयल, मध्याह्न, चुबन, मधुकर, दुख में, दुखों का स्वागत, आदर्श प्रेम, तुमसे, मधुरस्मृति, दुखिया का प्यार, कलियों से, विरह-विषाद, मूक प्रेम, उपहार, मेरा धर्म, सकोच, प्रेम का आरभ, आत्म सदेह, जन्म दिवस शीर्षक कविताओं का सग्रह है।

यद्यपि यह बच्चन की सर्व प्रथम कृति है, फिर भी सभी पत्र-पत्रिकाओं ने इसकी प्रशसा की है। बच्चन की कविताओं का क्रम विकास समझने के लिए इसे देखना बहुत आवश्यक है। किसी कवि की अतिम कृतियाँ ही उसकी उच्चता का आभास देती हैं, परतु कवि ने कहाँ से प्रारभ करके वह उच्चता प्राप्त की इसे उसकी आरभिक रचनाएँ ही बतला सकती हैं।

'विश्वमित्र' ने इसके विषय मे लिखा था, 'इसके रचयिता महोदय का नाम यद्यपि हम हिंदी मे प्रथम बार देख रहे हैं तथापि कविताएँ पढने से मालूम होता है कि वे इस कला मे सिद्ध-हस्त हैं। कविताएँ सुदर और सरस हैं और भाव यथेष्ट परिपक्व हैं।'

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

खैयाम की मधुशाला

(दूसरा संस्करण)

यह फिट्जजेराल्ड कृत रुबाइयात उमर ख़ैयाम का पद्यात्मक हिंदी रूपातर है जिसे कवि ने सन् १९३३ में उपस्थित किया था। मूल पुस्तक के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इसकी गणना ससार की सर्वोत्कृष्ट कृतियों मे है। अनुवाद में प्रायः मूल का आनद नहीं आता, परतु बचन के अनुवाद में कहीं आपको यह कमी न दीख पड़ेगी। वे एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने के फेर में नहीं पड़े। उन्होंने उमर ख़ैयाम के भावों को ही प्रधानता दी है। इसी कारण उनकी यह कृति मौलिक रचना का आनद देती है।

स्वर्गीय प्रेमचद ने जनवरी '३६ के 'हस' में पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा था कि 'बच्चन ने उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अनुवाद नहीं किया, उसी रग में डूब गए हैं।' हिंदी में पुस्तक के और अनुवाद भी हैं पर 'लीडर' ने स्पष्टतया लिखा था कि.— Bachchan has a great advantage over many translators in that he himself feels, for all we know very much like the poet astronomer of Hishapue

दूसरे सस्करण में मूल अग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

समझ लीजिए। 'ल' ह्रस्व है अतएव 'लघु' है और 'गा' दीर्घ वर्ण होने से 'गुरु' है।

(५) गणों के देवता और फल

गणों के देवता और उनके फल आदि के विषय में पिंगल-शास्त्र में बहुत कुछ विवेचन किया गया है। विस्तार-भय से यहाँ इनका उल्लेख मात्र किया जाता है।

शास्त्रकारों ने आठ गणों के स्वामी आठ देवता माने हैं, प्रत्येक का फल भिन्न-भिन्न होता है। निम्नलिखित विवरण से यह सब स्पष्ट हो जायगा *।

	गण	देवता	फल
शुभ	मगण	भूमि	श्री
	नगण	स्वर्ग	सुख
	भगण	चंद्र	यश
	यगण	जल	वृद्धि
अशुभ	जगण	सूर्य	रोग
	रगण	अग्नि	मृत्यु
	सगण	वायु	प्रवास
	तगण	व्योम	शून्य

---

* मो भूमि श्रियमातनोति य जलं वृद्धिं र चाग्निर्मृतिम्।
सो वायु परदेशदूरगमन तव्योम शून्य फलम्॥
जः सूर्यो रुजमाददाति विपुल भेन्दुर्यशो निर्मलम्।
नो नाकश्च सुखप्रद फलमिदं प्राहुर्गणाना बुधा॥

देव-विषयक काव्यों में तो शुभाशुभ का विचार ही नहीं रह जाता, किंतु नर-विषयक काव्यों के प्रारंभ में अशुभ गण वर्जित हैं। यह नियम छंद के प्रथम चरण के आदि के तीन अक्षरों के लिए ही है, अन्यत्र नहीं।

गण-वृत्तों में गण-दोष नहीं माना जाता, क्योंकि वहाँ जिस गण का विधान किया जाता है वह गण शुभ हो चाहे अशुभ लाना ही पडता है। जैसे 'दुर्मिल सवैया' आठ सगणों का होता है। वहाँ आरभ में अशुभ 'सगण' का लाना अनिवार्य है। ऐसे अवसर पर ध्यान यही रखना चाहिए कि प्रारभ में यदि 'ज, र, स, त' लाने पड़ें तो यथासंभव देववाची या मगलात्मक शब्द रखे जायें। मात्रिक छंदों के प्रारभ में तो इनका प्रयोग बचाना ही चाहिए। कुगण के पढने से छंद की रोचकता नष्ट हो जाती है। अतएव काव्य-रचना में कुछ लोग 'द्विगण' का भी विचार करते हैं। एक गण के साथ दूसरे विशेष गण के संयोग से छंद की रोचकता की कई अंशों में रक्षा की जा सकती है। 'द्विगण' के सबध में विस्तृत विवेचन की आवश्यकता नहीं जान पडती, तथापि मगण और नगण ये परस्पर मित्र हैं, भगण-यगण दास हैं, जगण-तगण उदासीन तथा रगण सगण शत्रु हैं।

(६) शुभाशुभ वर्ण एवं दग्धाक्षर

वर्णों में भी शुभाशुभ का ध्यान रखना पडता है। स्वर सभी शुभ माने गए हैं। व्यजनों में 'क, ख, ग, घ, च, छ, ज, त द, ध, न, य, श, स' ये शुभ हैं और सब अशुभ। अशुभ वर्णों में भी 'झ, ह, र, भ, प' ये पाँच तो नितांत दूषित हैं, इनको 'दग्धाक्षर' कहते हैं। पद्य के आरभ में इनका होना एकदम वर्जित है।

किंतु यदि ये 'गुरु' होकर आएँ अथवा किसी देवता वा मंगलवाचा शब्द के प्रारभ मेँ हों तो उक्त दोष का परिहार हो जाता है।

(७) गति-यति

प्रत्येक छंद की एक 'लय' होती है, उसे 'गति' या 'प्रवाह' भी कहते हैं। छंद की रचना में 'गति' या लय' का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है; पर इसके लिए कोई विशेप नियम नहीं है। लय का ज्ञान अभ्यास पर ही निर्भर है। लक्षण के अनुसार शुद्ध रहते हुए भी गति का ध्यान न रखने से छंद दोष-युक्त हो जाता है; जैसे—

वरु नरक कर भल वास ताता।
जनि दुष्ट संग देहु विधाता॥

इस छद में चौपाई के लक्षण के अनुसार १६ मात्राएँ होने पर भी लय का अभाव है, पढ़ने में रुकावट आ जाती है. पाठ धारा वाहिक गति से नहीं चलती, अत दूपित है। ऐसे स्थलों पर,जहाँ गति या प्रवाह ठीक न हो वहाँ 'गति-भग' दोप माना जाता है। उक्त चौपाई को लय-युक्त करने के लिए हमें इसका रूप यों करना होगा—

वरु भल वास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देहु विधाता॥

इसके सिवाय प्रत्येक पद्य में चार चरण होते हैं। उनमें से एक चरण का शब्द कटकर या टूटकर दूसरे चरण में लगने से भी पद्य दूषित होता है, ऐसे दोप को 'यति-भग' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

दोउ समाज निमिराज[1] रघु,-राज[2] नहाने प्रात।
बैठे सब वट-विटप-तर[3], मन मलीन कृस-गात[4]॥

१ जनक। २ राम। ३ बरगद के पेड़ के नीचे। ४ दुर्बल शरीर।

यहाँ 'रघुराज' शब्द दोहे के पहले और दूसरे चरणों में कटकर 'रघु' एक ओर रह जाता है और 'राज' दूसरी ओर चला जाता है। यही 'यति-भग' है।

(८) छंदों के भेदोपभेद

छद दो प्रकार के होते हैं—(१) वैदिक और (२) लौकिक। वैदिक छदों का हिंदी-भाषा में कोई प्रयोजन नहीं, अतएव उनका वर्णन इस स्थान पर अनुपयुक्त होगा। लौकिक छद के पुन दो भेद होते हैं—(१) मात्रिक अथवा जाति और (२) वर्णिक अथवा वृत्त। साधारणतः प्रत्येक छंद में चार 'चरण' होते है *। चरण का 'पद' अथवा 'पाद' भी कहते है। जिन छदों के चरणों में मात्राओं की सख्या का नियम हो उन्हें मात्रिक छद या जाति कहते हैं तथा जिनमें वर्णों की सख्या तथा लघु-गुरु के क्रम का नियम हो उन्हें वर्णिक छद या वृत्त कहते हैं। इनमें कुछ को छोड़कर प्राय. सबमें 'गणों' का उपयोग किया जाता है। मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छद पुन. तीन-तीन प्रकार के होते हैं—सम, अर्द्धसम और विषम।

(१) मात्रिक-भेद

१—'मात्रिक सम' वे छद हैं जिनके चारों चरणों में मात्राओं का क्रम समान हो, जैसे—चौपाई, हरिगीतिका, रोला आदि।

२—'मात्रिक अर्द्धसम' वे छद हैं जिनके पहले और तीसरे

* कुछ ऐसे भी छद होते हैं, जिनमें चरण तो चार ही होते हैं, पर वे लिखे दो ही पक्तियों में जाते है, यथा—दोहा, सोरठा, बरवै, उल्लाला आदि। ऐसे छदों की प्रत्येक पक्ति को 'दल' कहते हैं।

चरणों में तथा दूसरे एव चौथे चरणों में बराबर मात्राएँ हों; जैसे—दोहा, सोरठा, बरवै आदि।

३—'मात्रिक विषम' वे छद हैं जिनके चारों चरणों में मात्राओं का क्रम अलग-अलग हो, जैसे—आर्या।

ऐसे भी मात्रिक छद हिंदी में बहुत प्रचलित हैं जिनमें चार से अधिक चरण होते हैं। उन्हें भी 'मात्रिक विषम' छंदों में गिन सकते हैं, अतएव मात्रिक विषम' छंद का व्यापक लक्षण यह होगा—"जो छंद मात्रिक सम या मात्रिक अर्द्धसम न हों, वे 'मात्रिक विषम' हैं", जैसे—कुंडलिया और छप्पय। ये दोनों छ छः चरणों के छंद हैं और दो-दो छंदों के मिश्रण से बने हैं। यही इनकी विषमता है।

मात्रिक सम छंद दो प्रकार के होते हैं—(१) साधारण और (२) दंडक। जिन छंदों के प्रत्येक चरण में ३२ या इससे कम मात्राएँ हों उन्हें 'साधारण' कहते हैं और इससे अधिक मात्रावाले छंद 'दंडक' कहलाते हैं।

(२) वर्णिक भेद

१—'वर्णिक सम' छंद वे हैं जिनके चारों चरणों में 'वर्णों' या 'गणों' का क्रम समान हो, जैसे—वसततिलका, इंद्रवज्रा, मालिनी, त्रोटक, दुर्मिल (सवैया) आदि।

२—'वर्णिक अर्द्धसम' छंद वे हैं जिनके पहले तीसरे तथा दूसरे-चौथे चरणों में वर्ण-क्रम तथा संख्या समान हो।

३—'वर्णिक सम' वे छंद हैं जिनके चारों चरणों में वर्ण-संख्या भिन्न-भिन्न हो *।

* वर्णिक अर्द्धसम और वर्णिक विषम का प्रचार हिंदी में बहुत ही कम—प्राय नहीं के बराबर है।

वर्णिक विषम के भी दो भेद होते हैं—(१) साधारण और (२) दडक। २६ वर्णों तक के वृत्त 'साधारण वृत्त' * कहलाते हैं और इससे अधिक वर्णवाले 'दडक वृत्त' कहे जाते हैं। वर्णिक दंडकों में मनहरण कवित्त, रूप घनाक्षरी और देवघनाक्षरी बहुत प्रसिद्ध हैं।

नीचे के वृक्ष से छदों के भेदोपभेदों का विवरण बहुत स्पष्ट हो जायगा—
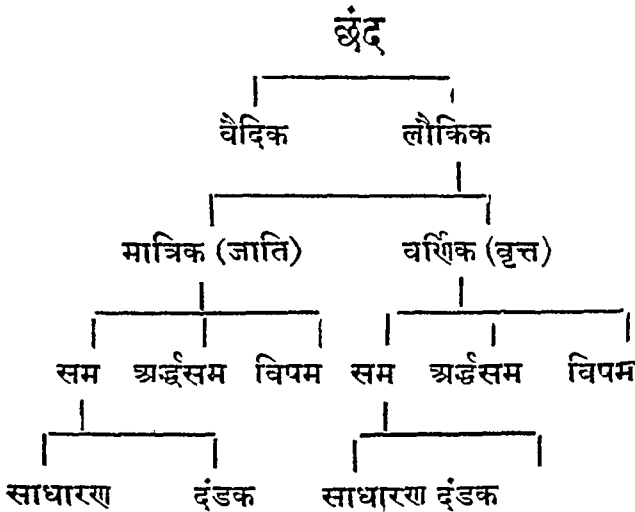
मात्रिक छद और वर्णिक छद की पहचान के लिए इन बातों का ध्यान रखना चाहिए—

* बाईस वर्णों से लेकर छब्बीस वर्णों तक के छद 'सवैया' के नाम से प्रसिद्ध है।

(१) जिस छद के चारों चरणों में या तो वर्ण समान हों या केवल वर्ण क्रम एक-सा हो अर्थात् लघु-गुरु समान क्रम से मिलें वह वर्णिक छंद होगा। वर्णिक समवृत्तों में अक्षर तो समान होते ही हैं, साथ ही लघु-गुरु का क्रम एक सा रहने से मात्राएँ भी बराबर ही होती हैं।

(२) जिस छंद के पदों में गुरु-लघु का कोई क्रम न हो, पर मात्राओं में समानता हो वह मात्रिक छद होगा।

(६) संख्यासूचक शब्द

काव्य में अनेक स्थलों पर संख्या सूचित करने का काम पड़ता है। परंतु छंद के अनुरोध से मात्राओं की न्यूनाधिकता अथवा वर्ण की असुविधा के कारण एक, दो, तीन, चार आदि संख्याएँ लिखने में अनेक अड़चनें पड़ती हैं। अतएव कवि लोग प्रायः संख्यासूचक शब्द का प्रयोग करते हैं। नीचे एक से बीस तक की संख्याओं के लिए शब्द लिखे जाते हैं।

शून्य—आकाश।

एक—पृथ्वी, चंद्रमा, आत्मा।

दो—आँख, पक्ष, हस्त, सर्प-जिह्वा, नदी कूल।

तीन—गुण, राम, काल, अग्नि, शिव-नेत्र, ताप।

चार—वेद, वर्ण, आश्रम, ब्रह्मा के मुख, युग, धाम, पदार्थ, पाद।

पाँच—काम-शर, इंद्रिय, शिव-मुख, पांडव, गति, प्राण, कन्या, यज्ञ, भूत, वर्ग, गव्य।

छः—ऋतु, राग, रस, वेदांग, शास्त्र, ईति, कार्तिकेय के मुख, भ्रमर के पद।

सात—मुनि, स्वर, पर्वत, समुद्र, लोक, सूर्य के घोड़े, वार, पुरी, गोत्र, ताल।

आठ—सिद्धि, वसु, प्रहर, नाग, दिग्गज, योग।

नव—भू-खंड, अंक, निधि, ग्रह, भक्ति, नाडी, रध्र, द्रव्य।

दस—दिशा, दशा, अवतार, दोष।

ग्यारह—शिव।

बारह—सूर्य, राशि, भूषण, मास।

तेरह—नदी, परम, भागवत, किरण।

चौदह—भुवन, रत्न, मनु, विद्या।

पंद्रह—तिथि।

सोलह—सस्कार, शृगार, कला।

सत्रह—इसके लिए कोई शब्द नहीं है। एक और सात के कोई दो सकेत मिलाकर काम निकाला जाता है।

अट्ठारह—पुराण।

उन्नीस—इसके लिए भी कोई शब्द नहीं है। एक और नौ के कोई दो सकेत मिलाकर काम चलाया जाता है।

बीस—नख।

उक्त सकेतों से सख्या का काम लेने में एक बड़ा भारी सुभीता यह है कि हम इनके बदले इनके पर्यायवाची शब्दों का भी उपयोग कर सकते हैं। चद्रमा के लिए शशि, इदु आदि अथवा शिव के लिए रुद्र, शभु, ईश इत्यादि लिखने में कोई दोष नहीं।

कविता में अंक लिखने के लिए आचार्यों ने एक नियम निर्द्धारित कर लिया है कि अंकों की गति दाहिनी ओर से बाईं ओर को होती है (अकानां वामतो गति)। यदि हमें १७ का बोध कराना होगा तो 'चद्र स्वर' न कहकर 'स्वर चंद्र' कहेंगे। शब्द-क्रम से 'स्वर चद्र' से ७१ का बोध होता है परतु उक्त नियम के अनुसार १७ का ही बोध होगा।

(१०) तुक

'तुक' कान का विपय है। छंद के चरणांत में एक-से स्वरवाले एक या अनेक अक्षर आ जाते हैं उन्हीं को 'तुक' कहते हैं। कोई-कोई इन्हें 'अंत्यानुप्रास' के नाम से शब्दालकारों में गिनते हैं। तुक कविता के लिए अनिवार्य नहीं कही जा सकती, परतु इसमें कोई संदेह नहीं कि इससे कविता में लयगत सौंदर्य आ जाता है, पद्य अधिक श्रुति-मधुर एव चित्ताकर्षक हो जाता है। कम से कम गीत-काव्य तो बिना तुक के रोचक हो नहीं सकता। मनुष्य की प्रवृत्ति ही तुकमय है। अशिक्षित और गँवार लोगों के जातीय गानों में भी तुक मिली रहती है। तुक का न मिलना कानों को कुछ खटक अवश्य जाता है। इन्हीं सब कारणों से हिंदी-कविता में प्रारंभ से ही तुक की प्रधानता रही है। दूसरे हिंदी-कविता का उत्थान और उत्कर्ष वीरगाथा-काव्यों एव गीत-काव्यों से हुआ है। अतएव तुक का मिलना इसमें अनिवार्य था। यही कारण है कि हिंदी में तुकांत कविता का बाहुल्य है, अतुकांत कविता बहुत कम परिमाण में है। आजकल लोगों की प्रवृत्ति, अँगरेजी और बँगला की देखादेखी हिंदी में भी, अतुकात कविता (Blank Verse) लिखने की ओर गई है, पर जिन लोगों के कानों को तुकात कविता का मजा मिल चुका है उनको ये बेतुकी कविताएँ अवश्य खटक जाती हैं। सचमुच उनमें लय-सौंदर्य की बहुत कुछ कमी हो जाती है। परंतु हर्ष की बात तो यह है कि ऐसे लोग ब[illegible]त थोडे हैं जिनको तुकात कविता नहीं रुचती। अतुकात कविता के लिए कुछ खास-खास छंद ही उपयुक्त होते हैं। संस्कृत के वर्णवृत्त इसके लिए बड़े ही समीचीन प्रतीत होते हैं। उनमें वर्णक्रम इस प्रकार संघटित रहता है कि स्वभावत बड़ी मधुर

लय आ जाती है। इस लय के कारण तुक का अभाव नहीं खटकता। जिन विद्वानों ने सस्कृत के छदों का उपयोग कर हिंदी में अतुकांत कविता की है वे पूर्णतया सफल हुए हैं। प० अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'प्रिय-प्रवास' अतुकांत होने पर भी किसी भी तुकांत कविता से रोचकता तथा लय में उन्नीस नहीं है। परतु हिंदी के मात्रिक छद बिना तुक के अच्छे नहीं लगते। संभवत इसका कारण यही हो सकता है कि हमारे कानों को तुकबदी सुनने का ही अभ्यास पड़ गया है इसलिए बेतुकी कविता उनको एकदम खटकने लगती है।

साराश यह कि कविता में भाव ही प्रधान है। तुक तो उसके लय-सौंदर्य की वृद्धि के लिए है और इससे कविता विशेष हृदय-सवेद्य एव सरस जान पडती है। अतएव जहाँ बेतुकी कविता करनी हो वहाँ उसके उपयुक्त छद चुन लेना चाहिए, अन्यथा लय का अभाव होने से वह पद्य फीका जान पडेगा। हमें तो सस्कृत के वर्ण-वृत्त ही इसके लिए विशेष उपयुक्त जान पड़ते हैं।

केवल अत के अक्षरों का मिलना ही तुक नहीं कहलाता, किंतु उनके स्वर भी मिलने चाहिएँ। लय की सुंदरता के विचार से तुक भी तीन प्रकार की होती है—(१) उत्तम, (२) मध्यम और (३) अधम।

१—यदि पद्य के अत में दो गुरु (SS) आ पडें तो पाँच मात्राओं का सम स्वर होना उत्तम है, चार का मध्यम और दो का अधम।

उत्तम

नींद बहुत प्रिय सेज-तुराई[1]। लखहु न भूप-कपट-चतुराई॥

---

१ दुलाई, रजाई।

मध्यम

बाजहिं बाजन विविध विधाना[1]। पुर-प्रमोदु[2] नहिं जाइ बखाना[3]।

अधम

राम - सीय - पद - प्रीति घनेरी। नित-प्रति नूतन होइह मारी॥

२—यदि पद्य के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) या लघु-गुरु (।ऽ) आ पड़ें तो पाँच और चार मात्राओं की तुक उत्तम, तीन की मध्यम, दो या एक की अधम है।

उत्तम

(१) कौसल्या के बचन सुनि, भरत-सहित रनिवासु।
व्याकुल बिलपत राजगृह, मानहु सोक-निवासु॥

(२) लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय-राम-चरन-सनेहु लखि सुख पावहीं॥

मध्यम

(१) कहा होय उद्यम किए, जो प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसे उपजे खेत कों, करत सलभ निरमूल॥

(२) क्या पाप की ही जीत होती, हारता है पुण्य ही।
इस दृश्य को अवलोक कर, तो जान पड़ता है यही॥

अधम

(१) सरनि सरोरुह जल-बिहँग, कूजत गुंजत भृंग।
बैर-बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहु रंग॥

---

१ तरह। २ आनद। ३ वर्णन नहीं किया जाता।

(२) रहती मैं अकेली तो क्या भय था, मुझे सोच न था तनका अपुने
पर साथ में लाड़ले जीवन-मूर, ये छौने दुलारे हैं दोनों जने॥

३—यदि पद्य के अंत में दो लघु (।।) आ पड़ें तो चार मात्राओं की तुक उत्तम, दो की मध्यम और एक की अधम होती है।

उत्तम

विविध रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति।
कहुँ चरवी सौं चटचटाति कहुँ दहदह दहकति॥

मध्यम

व्योम को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठो पहर॥

अधम

अकपट-चित से वन अनन्य-मन रोप युगल पग।
वे करते अनुसरन राम का नीरवता-सँग॥

भाषा-काव्य में तुकांत छ प्रकार के हो सकते हैं—

१ सर्वांत्य—जिस छंद के चारों चरणों में तुक मिली रहती है, जैसे—सवैया, कवित्त इत्यादि में।

२ समांत्य विषमांत्य—जिस छंद के विषम (पहले-तीसरे) चरणों का तथा सम (दूसरे चौथे) चरणों का तुकांत एक-सा हो, जैसे—

जेहि सुमिरत सिधि होय, गन-नायक करि-वर-वदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन॥

३ समांत्य—जिस छंद में केवल दूसरे और चौथे चरणों का तुकांत मिले, जैसे—दोहा।

४ विषमांत्य—जिसमें पहले और तीसरे चरण का तुकांत एक-सा हो, जैसे—सोरठा।

५ सम-विषमांत्य—जिस छंद में पहले-दूसरे चरणों का और तीसरे-चौथे चरणों का तुकांत एक-सा हो, जैसे—चौपाई।

६ भिन्नांत्य—जिस छंद के प्रत्येक चरण में भिन्न-भिन्न तुकांत हो उसे भिन्न तुकांत या बेतुकी कविता कहते हैं, जैसे—

पल-पल जिसके मैं पंथ को देखती थी।
निशिदिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती॥
उर पर जिसके है सोहती मुक्त-माला।
वह नव नलिनी से नैनवाला कहाँ है॥

(११) प्रत्यय

जिनके द्वारा अनेक प्रकार के छंदों के विचार और संख्या आदि प्रकट किए जाते हैं उन्हें छंद शास्त्र में 'प्रत्यय' कहते हैं। इस शास्त्र में कुल नौ प्रत्यय हैं—१ प्रस्तार, २ सूची, ३ पाताल, ४ उद्दिष्ट, ५ नष्ट, ६ मेरु, ७ खंड-मेरु, ८ पताका और ९ मर्कटी। पिंगल में इन सबपर बहुत ही विस्तृत विवेचन किया गया है। वास्तव में यह पिंगल का गणित-विभाग है। इन सबके द्वारा हम यही जान सकते हैं कि अमुक मात्रा के छंदों की संख्या कितनी हो सकती है, अमुक भेद कितनी मात्राओं की छंद-संख्या है, अमुक मात्राओं के छंद का अमुक भेद कैसा होगा इत्यादि। परंतु यह विषय आजकल किसी उपयोग में नहीं आता। अतएव इसका विशेष विवेचन करना व्यर्थ है, केवल उल्लेख-मात्र किया जाता है, रीति समझाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं।

(१) प्रस्तार में जितनी मात्रा के जितने भेद हो सकते हैं उनके रूप दिखलाए जाते हैं। प्रस्तार के स्पष्टीकरण से

यह जाना जाता है कि एक मात्रा के छंद का १ भेद, दो मात्राओं के छंद के २ भेद, तीन मात्राओं के छद के ३, चार मात्राओं के छंद के ५, पाँच मात्राओं के छंद के ८ और छः मात्राओं के छंद के १३ भेद होते हैं, इनसे अधिक नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त आगे के छंदों की संख्या जानने के लिए पिछले दो की संख्या जोड़ देनी चाहिए। सात मात्राओं की छंद-संख्या—पाँच मात्राओं की छद-संख्या ८ और छ. मात्राओं की १३ के योग के बराबर—अर्थात् २१ होगी। इसी प्रकार और भी जान लेना चाहिए।

(२) सूची के द्वारा मात्रिक छंदों की संख्या की शुद्धता और उनके भेदों में आदि-अत गुरु अथवा आदि-अंत लघु की संख्या सूचित होती है।

(३) पाताल के द्वारा प्रत्येक मात्रिक छद के भेद अर्थात् उसकी संख्या का ज्ञान, लघु-गुरु, संपूर्ण मात्राएँ तथा वर्ण आदि जाने जाते हैं।

(४) यदि कोई कितनी ही मात्रा के प्रस्तार का भेद लिखकर पूछें कि यह कौन सा भेद है, तो हम उद्दिष्ट द्वारा उसका उत्तर जान सकते हैं।

(५) नष्ट के द्वारा कितनी ही मात्रा के प्रस्तार के किसी भेद का स्वरूप जाना जाता है।

(६) जितनी मात्रा के संपूर्ण प्रस्तार के भेदों अर्थात् छदों के रूपों में जितने-जितने गुरु और जितने-जितने लघु के जितने रूप होते हैं उनकी सख्या दिखलाने को मेरु कहते हैं।

(७) खंडमेरु का भी वही प्रयोजन है जो मेरु का है।

(८) मेरु के द्वारा गुरु और लघु के जितने-जितने भेद प्रका-

शित होते हैं, पताका के द्वारा उतने-उतने भेदों के योग्य-स्थान जाने जाते हैं।

(९) मर्कटी के द्वारा मात्रा के प्रस्तार में लघु-गुरु, सर्व-कला और सब वर्णों की सख्या जानी जाती है।

यद्यपि सब मिलाकर ९ प्रत्यय हैं तथापि सूची, प्रस्तार, नष्ट और उद्दिष्ट ये चार ही विशेष प्रयोजनीय हैं। अन्य पाँच प्रत्यय केवल कौतुक हैं। अतएव इनके न जानने से भी कोई विशेष हानि नहीं है।

(१२) मात्रिक छंद

(१) तोमर

'तोमर राशि[1] गल[2] अंत।'

तोमर छ्द का प्रत्येक चरण १२ मात्राओं का होता है। अत में गुरु-लघु (ऽ।) होते हैं।

उदाहरण—

तव चले वान कराल। फुंकरत जनु वहु व्याल[3]॥
कोप्यो समर श्रीराम। चल विसिख[4] निसित[5] निकाम[6]॥

(२) उल्लाला *

'उल्लाला तेरह कला।'

---

१ वारह। २ गुरु-लघु। ३ सर्प। ४ वाण। ५ तेज, चोखा। ६ सुदर।

* इसीसे मिलता-जुलता एक 'उल्लाला' छद है। किसी-किसी ने उसको भी 'उल्लाला' लिख दिया है। वह मात्रिक अर्द्धसम छंद है। उसके पहले तीसरे पदों में १५ १५ और दूसरे-चौथे पदों में १३-१३ मात्राएँ होती हैं। यथा—

जहँ धन-विद्या बरसत रही, सदा अबै वाही ठहर।
बरसत सब ही बिधि बेबसी, अब तो चेतौ बीर-बर॥

उल्लाला छंद के प्रत्येक चरण में १३-१३ मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण—

बात पुरानी उड़ गई, गया पुराना ढंग है।
नई सभ्यता आ गई, चढ़ा नया अब रंग है॥

(३) चौपई

'तिथि गल अंत चौपई माहिं।'

चौपई के प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु-लघु (SI) आते हैं।

उदाहरण—

उपवन में अति भरी उमंग।
कलियाँ खिलती हैं बहुरंग॥
पर मिलता है उनको मान।
जो हैं सुखद सुगंध-निधान[1]॥

(४) चौपाई

'कल सोरह जत बिन चौपाई।'

चौपाई के प्रत्येक पद में १६ मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में जगण (ISI) अथवा तगण (SSI) का निषेध है, अर्थात् गुरु-लघु (SI) न आने चाहिएँ। अंत में एक लघु के होने से लय खटकने लगती है, परंतु दो लघु साथ आ जाने से यह दोष नहीं रहने पाता।

उदाहरण—

जहँ लगि[2] नाथ नेह[3] अरु नाते[4]।
पिय-बिनु तियहिं तरनि[5] तें ताते[6]॥

---

१ खजाना। २ तक। ३ प्रेम। ४ संबंध। ५ सूर्य। ६ गरम।

तनु धनु धाम धरनि सुरराजू[1]।
पति-बिहीन सबु सोक-समाजू॥

(५) रोला

'रखिए कल चौबीस, शंभु[2] सरिता[3] यति रोला।'

इसके प्रत्येक चरण में ११ और १३ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती हैं। जिस रोला के चारों चरणों में ग्यारहवीं मात्रा लघु हो उसे 'काव्य छंद' कहते हैं। प्राय इसके चरणांत में दो गुरु रखे जाते हैं। पर अंत में चार लघु या गुरु-लघु-लघु का क्रम भी मिलता है।

उदाहरण—

नव उज्वल जल-धार, हार-हीरक[4]-सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद, मध्य मुकुता-मनि पोहति[5]॥
लोल[6] लहर लहि पवन, एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन-मन बिविधमनोरथ करत मिटावत॥

(६) रूपमाला

'रत्न दिशि कल रूपमाला, राखिए गल अंत।'

चौदह और दस मात्राओं की यति से चौबीस मात्राओं का रूपमाला छंद होता है। अंत में गुरु लघु (ऽ।) होना चाहिए। आदि में एक त्रिकल (ऽ।) के बाद एक द्विकल का आना आवश्यक जान पड़ता है। इसका एक नाम 'मदन' भी है।

---

१ इंद्र-लोक। २ ग्यारह। ३ तेरह। ४ हीरे का हार। ५ पिरोती है।
६ चंचल।

उदाहरण—

जात है वन वादि हो[1] गल आँधिकै बहुतंत्र।
धामहीं किन जपत कामद, राम-नाम सुमंत्र॥
ज्ञान की करि गूदरी दृढ़, तत्त्व तिलक बनाव।
'दास' परम अनूप सद्गुन, रूपमाला गाव॥

(७) गीतिका

'रत्न[2] रवि[3] कल अंत रखिए, छंद रचिए गीतिका।'

गीतिका के प्रत्येक पाद में १४ और १२ के विराम से २६ मात्राएँ होती हैं। अंत में लघु-गुरु (।ऽ) होता है। इस छंद का मुख्य नियम तो यह है कि प्रत्येक पाद की तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्राएँ सदा लघु होती हैं। अंत में रगण (ऽ।ऽ) आ जाने से छद श्रुति-मधुर हो जाता है।

उदाहरण—

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं।
चेत कर चलना कुमारग में कदम धरना नहीं॥
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
बोध-वर्द्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं॥

(८) सार

'यति सोरह रवि, अंते दो गुरु, छंद सार रचु नीको।

इस छद के प्रत्येक चरण में १६, १२ के विश्राम से २८ मात्राएँ होती हैं। अंत में दो गुरु आते हैं। इसे 'ललितपद' भी कहते हैं।

---

१ व्यर्थ ही। २ चौदह। ३ बारह।

उदाहरण—

प्रकटहु रवि-कुल-रवि निसि बीती प्रजा-कमल-गन फूले।
मंद परे रिपु-गन[1] तारा सम जन[2]-भय-तम[3] उनमूले[4]॥
नसे चोर लंपट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध-बंदी-सूत-चिरैयन[5] मिलि कल-रोर[6] मचायो॥

(९) हरिगीतिका

'शृंगार दिनकर पै विराम, लगंत में हरिगीतिका।'

हरिगीतिका के प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं। १६, १२ पर यति होती है। अंत में लघु-गुरु (IS) होना चाहिए। इसका क्रम यों होना चाहिए—२ + ३ + ४ + ३ + ४, ३ + ४ + ५। जहाँ चौकल है वहाँ जगण (ISI) अति निषिद्ध है। अत में रगण (SIS) श्रुति-सुखद होता है। पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्राएँ लघु रहने से धारा ठीक रहती है।

उदाहरण—

निज धर्म का पालन करो, चारों फलों की प्राप्ति हो।
दुख-दाह[7], आधि-व्याधि[8] सबकी एक साथ समाप्ति हो॥
ऊपर कि नीचे एक भी सुर[9] है नहीं ऐसा कहीं।
सत्कर्म में रत[10] देख तुमको जो सहायक हो नहीं॥

(१०) वीर

'सोरह तिथि[11] यति अंत गला[12] हो, गाओ वीर छंद अभिराम।

१ शत्रु लोग। २ दास। ३ अधकार। ४ नष्ट हो गया। ५ मागध, बंदी और सूत रूपी पक्षियों ने। ६ मधुर ध्वनि। ७ दुःख की जलन। ८ मन का और शरीर का कष्ट। ९ देवता। १० लीन। ११ पंद्रह। १२ गुरु-लघु।

सोलह और पन्द्रह की यति से ३१ मात्राओं का वीर छंद होता है। अंत में गुरु-लघु होता है। इस छंद को 'आल्हा' भी कहते हैं।

उदाहरण—

सुमिरि भवानी जगदंबा का श्रीसारद के चरन मनाय।
आदि सरस्वति तुमका ध्यावों, माता कंठ विराजौ आय॥
जोति बखानौं जगदंबा कै, जिनको कला बरनि ना जाय।
सरद चंद-सम आनन राजै, अति छवि अंग-अंग रहि छाय॥

(११) त्रिभंगी

'दिसि[4] सिधि[5] वसु[6] संगी, जन रस[7] रंगी'
छंद त्रिभंगी, गात भलो।

यह छंद ३२ मात्राओं का होता है। १०, ८, ८, ६ पर यति होती है। अंत में गुरु होता है। इसके किसी चौकल में जगण (।S।) न पडने पाए।

उदाहरण —

परसत पद-पावन, सोक-नसावन, प्रगट भई तम-पुंज सही।
देखत रघुनायक, जन-सुख-दायक, संमुख ह्वै कर जोरि रही॥
अति प्रेम-अधीरा, पुलक सरीरा, मुख नहिं आवै वचन कही।
अतिसय[8] बड़भागी, चरनन लागी, जुगल नयन जल-धार बही॥

(१२) बरवै

'विषमै रवि कल बरवै सम मुनि[9] साज।'

---

१ जगज्जननी पार्वती। २ शरद् ऋतु का चंद्रमा। ३ मुख। ४ दस। ५ आठ। ६ आठ। ७ छ। ८ अत्यंत। ९ सात।

बरवै छंद के विषम अर्थात् पहले-तीसरे पादों में १२ मात्राएँ और सम अर्थात् दूसरे-चौथे चरणों में ७ मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक दल * में १९-१९ मात्राएँ हो जाती हैं। सम पदों के अंत में जगण (।ऽ।) रोचक होता है।

उदाहरण—

अब जीवन कइ है कपि, आस न कोइ।
कनगुरिया[1] कइ मुँदरी, कँगना[2] होइ॥

(१३) दोहा

'विषम सरित जन सिव समनि, दोहा गल रखि अंत।'

. दोहे के पहले और तीसरे अर्थात् विषम चरणों में १३-१३ तथा सम (दूसरे-चौथे) चरणों में ११-११ मात्राएँ होती हैं। विषम चरणों के आदि में जगण वर्जित है। सम चरणों के अत में गुरु-लघु होना चाहिए।

उदाहरण—

थोरेई गुन रीझते, बिसराई [3]वह बानि।
तुमहू कान्ह मनौ भए, आज-कालि के दानि॥

(१४) सोरठा

'तेरह सम विषमेस, उलटे दोहा सोरठा।'

सोरठा दोहे के ठीक विपरीत होता है अर्थात् दोहे के सम चरण सोरठे के विषम और दोहे के विषम चरण सोरठे के सम चरण हो जाते हैं। इसके विषम चरणों में ११ तथा सम चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं।

---

* देखिए पृष्ठ ११५ की पाद-टिप्पणी।

१ कनिष्ठिका अँगुली। २ कंकण। ३ आदत, स्वभाव।

उदाहरण—

जाँचे बारह मास, पियै पपीहा स्वाति-जल।
जान्यो 'तुलसीदास' जोगवत नेहो मेह-मन॥

(१५) कुडलिया

'दोहा रोला कुंडलित करि कुंडलिया होय।'

कुडलिया में २४-२४ मात्राओं के छ पद होते हैं। इस प्रकार यह १४४ मात्राओं का 'मात्रिक विषम छंद' है। आदि में दो दलों का एक दोहा और उसके बाद चार पदों का एक रोला छद जोडकर कुडलिया छद बनता है। दोहे के प्रथम चरण के आदि के कुछ शब्दों का रोला के चतुर्थ चरण के अतिम शब्दों के साथ और दोहे के चतुर्थ चरण का रोला के आदि से सिहावलोकन* होना आवश्यक है। कुडलिया के पाँचवें चरण के पूर्वार्द्ध में प्राय कवि का नाम रहता है।

उदाहरण—

चिंता-ज्वाल सरीर-वन, दावा[2] लगि-लगि जाय।
प्रगट धुवाँ नहिं देखियत, उर-अतर धुँधुवाय[3]॥
उर-अंतर धुँधुवाय, जरै ज्यों काँच की भट्टी।
जरि गो लोहू माँस, रहि गई हाड़ की टट्टी॥
कह 'गिरिधर कविराय', सुनो रे मेरे मिंता।
वे नर कैसे जियैं, जाहि तन व्यापे चिंता॥

(१६) छप्पय

'विरचहु छप्पय छंद को, धरि रोला उल्लाल।'

---

* देखिए पृष्ठ ५२।

१ मेघ, बादल। २ दावाग्नि। ३ हृदय मे भीतर-ही-भीतर सुलगती है।

छप्पय भी छः पदों का मात्रिक विषम छंद है, इसके आदि में २४-२४ मात्राओं के चार पद रोला के होते हैं। अंतिम दो दल या तो २८-२८ मात्राओं के उल्लाला छंद के होते हैं अथवा २६-२६ मात्राओं के उल्लाला के होते हैं।

उदाहरण—

(१) नीलांबर परिधान[1], हरित पटपर[2] सुंदर है।
सूर्य-चंद्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर[3] है॥
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन[4] हैं।
वंदीजन खग-वृंद, शेष-फन सिंहासन हैं॥
करते अभिषेक पयोद[5] हैं, बलिहारी इस वेश की।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश[6] की॥

(२) भीति[7] भंजिनी भुजा, शक्ति दलितों[8] आहों की।
उमड़े उर की आग, दवा दारुण दाहों[9] की॥
शौर्य[10] धैर्य की धरा, सपूती की शुचि शाला[11]।
भाग्य-चक्र की धुरी, विजय की मंजुल माला॥
रण-चंडी की संगिनी, विभीषिका[12] की धार है।
काली का अवतार है, नहीं! नहीं!! तलवार है॥

(१३) वर्णिक छंद

(१) इंद्रवज्रा

'ता ता ज गा गा शुभ इंद्रवज्रा'

---

१ पहनने का नीला वस्त्र। २ हरा मैदान। ३ समुद्र करधनी है। ४ गहना। ५ बादल। ६ ईश्वर। ७ भय। ८ कुचली हुई। ९ जलन। १० शूरता। ११ पवित्र घर। १२ भीषणता।

यह ग्यारह अक्षरों का वर्ण वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'त त ज ग ग' (SSI SSI ISI S S) होता है।

उदाहरण—

आधार कोई जिनका नहीं है।
हा! दुःख ही दुःख सभी कहीं है॥
तू ही उन्हें आकर गोद लेती।
हे मृत्यु! तू ही चिर-शांति[1] देती॥

(२) उपेंद्रवज्रा

'ज ता ज गा गाइ उपेंद्रवज्रा'

यह भी ग्यारह अक्षरों का वर्ण वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'ज त ज ग ग' (ISI SSI ISI S S) होता है। 'इंद्रवज्रा' का पहला अक्षर लघु कर देने से ही उपेंद्रवज्रा वृत्त बनता है।

उदाहरण—

वलाभिमानी धरणी-धनेश[2]।
कहो, कहाँ हैं अब वे जनेश[3]?
चले गए हैं सब आप-आप।
हुआ न दो ही दिन का प्रताप!

इस छंद के पदांत के वर्ण विकल्प से दीर्घ ही माने जायँगे।

सूचना—'इंद्रवज्रा' और 'उपेंद्रवज्रा' के चरणों के मिलने से कई प्रकार के छंद बनते हैं, जिन्हें 'उपजाति' कहते हैं। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

---

१ बहुत दिनों तक रहनेवाली शांति। २ पृथ्वी और धन के स्वामी। ३ राजा।

सद्धर्म का मार्ग तुम्हीं बताते।
तुम्हीं अघों[1] से हमको बचाते॥
हे ग्रंथ! विद्वान तुम्हीं बनाते।
तुम्हीं दुखों से हमको छुड़ाते॥

(३) वंशस्थविलम्

'विचार वंशस्थ ज ता ज रा करो'

यह बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'ज त ज र' (ISI SSI ISI SIS) होता है।

उदाहरण—

सशांति आते उड़ते निकुंज में।
सशांति जाते ढिग[2] थे प्रसून[3] के॥
वने महा - नीरव[4] - शांत - संयमी।
सशांति पीते मधु को मिलिंद[5] के॥

(४) त्रोटक

'रख चार स त्रोटक को रचिए'

यह भी बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में चार सगण (IIS IIS IIS IIS) होते हैं।

उदाहरण—

जितने गुण-सागर नागर[6] हैं।
कहते यह बात उजागर[7] हैं॥

---

१ पापो। २ पास। ३ फूल। ४ मौन। ५ भौंरे। ६ चतुर।
७ प्रसिद्ध।

अब यद्यपि दुर्बल आरत[1] है।
पर भारत के सम भारत है॥

(५) भुजंगप्रयात

'य हैं चार ही ये भुजगप्रयातम्'

यह भी बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में चार यगण (ISS ISS ISS ISS) रहते हैं।

उदाहरण—

कहूँ किन्नरी[2] किन्नरी[3] लै बजावैं।
सुरी[4] आसुरी[5] बाँसुरी गीत गावैं॥
कहूँ यच्छिनी[6] पच्छिनी[7] पढ़ावैं।
नगी कन्यका[8] पन्नगी[9] को नचावैं॥

(६) द्रुतविलंबित

'द्रुतविलंबित के न भभा र है'

इसमें बारह अक्षर होते हैं। प्रत्येक चरण में 'न भ भ र' (III SII SII SIS) होता है इसे 'सुंदरी' भी कहते हैं।

उदाहरण—

मन! रमा[10], रमणी[11], रमणीयता।
मिल गईं यदि ये विधि-योग[12] से॥

---

१ आर्त, दुःखी। २ किन्नरों की कन्याएँ। ३ सारंगी। ४ देवताओं की कन्याएँ। ५ असुरों की कन्याएँ। ६ यक्षों की कन्याएँ। ७ पक्षी, मैना कोकिल आदि। ८ पार्वत्य देशों की कन्याएँ। ९ सर्पों की कन्याएँ। १० लक्ष्मी। ११ स्त्री। १२ संयोग से, दैवात्।

उदाहरण—

तारे[1] डूबे तम टल गया छा गई व्योम[2]-लाली।
पंछी बोले तमचुर[3] जगे ज्योति फैली दिशा में॥
शाखा डोली सफल तरु की कजें[4] फूले सरों में।
धीरे-धीरे दिनकर[5] कढ़े तामसी[6] रात बीती॥

(१२) शार्दूलविक्रीडित

सूर्य[7]-स्वर्र मा स जा स त त गा शार्दूलविक्रीडितम्'

इसमें १९ अक्षर होते हैं। १२, ७ पर विराम होता है। प्रत्येक चरण में 'म स ज स त त ग' (SSS IIS ISI IIS SSI SSI S) होता है।

उदाहरण—

प्रातःकाल अपूर्व यान[9] मँगवा औ साथ ले सारथी।
ऊधो गोकुल को चले सदय हो स्नेहांबु[10] से भींगते॥
वे आए जिस काल कांत[11] व्रज में देखा महा मुग्ध हो।
श्रीवृंदावन की मनोज्ञ[12] मधुरा श्यामायमाना[13] मही॥

(१३) मदिरा सवैया

'भा सत से गुरु से मदिरा बनती अति मंजुल मोदमयी'

सात भगण (SII) और एक गुरु प्रत्येक चरण में रखने से बाईस अक्षरों द्वारा 'मदिरा' सवैया बनता है।

उदाहरण—

सिंधु तर्यो उनको वनरा तुम पै[14] धनु-रेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बँध्यौ उन वारिधि बाँधिकै बाट[15] करी॥

---

१ अंधकार। २ आकाश। ३ ताम्रचूड, मुर्गा। ४ कमल। ५ सूर्य। ६ अंधकारयुक्त। ७ बारह। ८ सात। ९ सवारी, रथ। १० आँसू। ११ सुंदर। १२ मनोहर। १३ श्याम के रंग में रँगी। १४ से। १५ रास्ता।

श्रीरघुनाथ प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलहु तूलहु[1] पूँछि 'जरी[2] न जरी[3] जरी लंक जराइ-जरी[4] ॥

(१४) मत्तगयद सवैया

'मत्तगयंद रचो रखि भा सत 'द्वै ग मनोहर मजु सवैया'

बाईस से छब्बीस अक्षरों तक के वर्ण वृत्त सवैया' कहलाते हैं। इसमें 'मत्तगयद' बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध है। इसके प्रत्येक चरण में सात भगण और दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

मोतिन-कैसी[5] मनोहर माल गुहै तुक-अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ, कथा हरि-नाम की, बात अनूठी बनाइ सुनावै ॥
'ठाकुर' सो कवि भावत मोहिं जो राज-सभा मैं बड़प्पन पावै।
पंडित और प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त[6] कहावै ॥

(१५) सुमुखी सवैया

'जु बारँ लगै सुमुखी तब होय मनोहरता सब लोग चहैं'

इस सवैया के प्रत्येक चरण में सात जगण (।ऽ।) और लघु-गुरु अर्थात् तेईस अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

गहौ पद-पंकज जाहि लखे सिवं, गंग-तरंग वही जिन ते।
लजै रवि-नंदिनि जा परसे, ग्रसते नहिं दोप दुसै[10] तिन ते ॥
निसा-मद-मोह, महादुख-दानवे[11], राम-कृपाहिं मिटे किन ते[12] ?
रटौ निसि-वासर नाम-उदारन, लोकन मैं न बड़ो इन ते ॥

---

१ रूई। २ युक्त। ३ जली। ४ रत्न जटित। ५ समान। ६ कविता। ७ सात। ८ कल्याण। ९ यमुना। १० दु सह। ११ राक्षस। १२ क्या वे नहीं मिटे? (अवश्य मिट गए)।

(१६) दुर्मिल

'आठ स को रचिए मन दै अति उत्तम दुर्मिल-दुर्मिल को'
इस सवैया में आठ सगण होते हैं।

उदाहरण—

तन की दुति[1] स्याम-सरोरुह[2] लोचन कंज की मंजुलताई[3] हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि-भरे, छवि भूरि[4] अनंग[5] की दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति-दामिनि-ज्यों[6] किलकैं कलँ बाल-विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा 'तुलसी'-मन-मंदिर मैं विहरैं॥

(१७) सुंदरी सवैया

'वसु[8] सो गुरु लाय भजो भगवानहिं सुंदरि साथ चलौ हे सयाने'
इस सवैया के प्रत्येक चरण में आठ सगण (।।ऽ) और एक गुरु वर्ण अर्थात् पचीस अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

भुव-भारहिं संयुत राकस[9] का गन जाय रसातल मैं अनुराग्यो।
जग मैं जय सब्द समेतहि 'केसव' राज विभीषनके सिर जाग्यो॥
मय-दानव-नंदिनि[10] के सुखसों मिलिकै सियके हियको दुख भाग्यो।
सुर-दुंदुभि-सीसगजा[11], सर रामको रावनके सिर साथ हि लाग्यो॥

(१८) मनहरण कवित्त

'आठ जाम जोग राम गुरु पद अनुराग,
भक्तिरस ध्याय संत मन हर लेत हैं।'

---

१ द्युति, कांति। २ कमल। ३ सुंदरता। ४ अत्यंत। ५ कामदेव। ६ छोटे-छोटे दाँत बिजली की तरह चमकते हैं। ७ सुंदर। ८ आठ। ९ राक्षस। १० मंदोदरी। ११ वह लकड़ी जिससे नगाड़ा बजाया जाता है।

यह दण्डक- वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर होते हैं। १६ और १५ अक्षरों पर विराम होता है और अंत में एक गुरु वर्ण।

उदाहरण—

उकुति[1] अनेक हीं[2] पै एकहू न कहो परै,
टेक तौ हमारी कैकईहू तैं सठिन[3] है।
कहै 'पदमाकर' न छाया है छमा[4] की ऐसी,
काया[5] कलि[6] क्रोध-मोह-माया की मठिन[7] है॥
यातैं गुहं[8] गीध[9] लौं सी वोधियो न[10] मो सौं राम!
मेरी मति घोर या कठोर कमठिन[11] है।
लंका-गढ़ तोरिबे तैं रावन सौं रोरिबे तैं[12]।
मोहिं भव-बंधन तें छोरिवो कठिन है॥

(१९) रूप घनाक्षरी

'राम राम-राम लोक नाम है अनूप रूप।
घन-अक्षरी है भक्ति भवसिंधु हर जाल।'

इस घनाक्षरी के प्रत्येक चरण में १६-१६ वर्णों के विराम से बत्तीस अक्षर होते हैं। अंत में एक लघु' होता है।

उदाहरण—

प्रभु-रुख पाइकै[13] वोलाइ बाल-घरनिहिं[14],
वंदिकै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि।
छोटो-सो कठौता भरि आनि[15] पानी गंगाजू को,
धोइ पायँ पीयत पुनीत वारि फेरि-फेरि॥

---

१ कथन (बात)। २ थी। ३ दुष्टा। ४ पृथ्वी। ५ शरीर। ६ पाप। ७ घर। ८ निषादराज। ९ जटायु। १० मत लगना। ११ कच्छपी। १२ बाझने से। १३ स्वीकृति पाकर। १४ बालक और स्त्री को। १५ लाकर।

'तुलसी' सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय-जय कहैं टेरि-टेरि।
विबुध सनेह-सानी बानी असयानी[1] सुनि,
हँसे राघौ[2] जानकी लषन तनैं[3] हेरि-हेरि॥

(२०) देवघनाक्षरी

राम योग भक्ति भेप जानि जपै महादेव,
घन-अक्षरी सी उठै दामिनि दमकि-दमकि।'

इस घनाक्षरी के प्रत्येक चरण में ८, ८, ८, ९ के विराम से ३३ अक्षर होते हैं। अंत के तीन अक्षर लघु रहते हैं।

उदाहरण—

झिल्ली[4] झनंकारैं[5] पिक[6] चातक पुकारैं बन,
मोरनि गुहारैं[7] उठैं जुगुन चमकि-चमकि॥
घोर-घन-कारे भारे धुरवा[8] धुरारे[9] धाय,
धूमनि मचावैं नाचै दामिनी दमकि-दमकि[10]॥
झूकनि बयारि[11] बहै, लूकनि[12] लगावै अंग,
हूकनि[13] भूभूकनि[14] की उर मैं खमकि-खमकि[15]।
कैसे करि राखौं प्रान प्यारे जसवंत बिना,
नान्हीं नान्हीं बूँद झरैं मेघवा झमकि-झमकि[16]॥

---

१ चतुराई से रहित, निष्कपट। २ राघव, रामचंद्र। ३ ओर। ४ झींगुर। ५ बोलते हैं। ६ कोयल। ७ जोर से बोलते हैं। ८ बादलों के टुकड़े। ९ धूल से बने हुए। १० बिजली चमक-चमककर। ११ वायु तेजी के साथ चलती है। १२ आग। १३ पीड़ा। १४ ज्वाला। १५ प्रज्वलित हो होकर। १६ घिर-घिरकर।